भगवान् एकलिंग और हारीत

रचयिताः—

गोस्वामी राघवानन्द

राजगुरु (मेवाड़ स्टेट)

प्रकाशकः—

ठिकाना कैलासपुरी

प्रथम संस्करण

विक्रमाब्द २००० शिवरात्रि

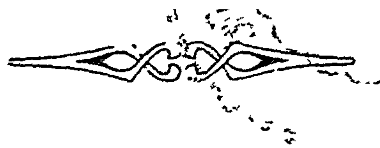
प्रकाशक:—
ठिकाना कैलासपुरी
(मेवाड़)

चित्र परिचय



मुद्रक:—
बाबू चिम्मनलाल जैन
आदर्श प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर

समर्पण



हारीत के मानससर में

विहरण करने वाले

राजहंस

भगवान् एकलिङ्ग !

योगियों के

निर्मल हृदय में विकसित होने वाले

तेरे चरणकमलों में

सविनय श्रद्धाभक्तिपुरस्सर

यह गुणकुसुममाला

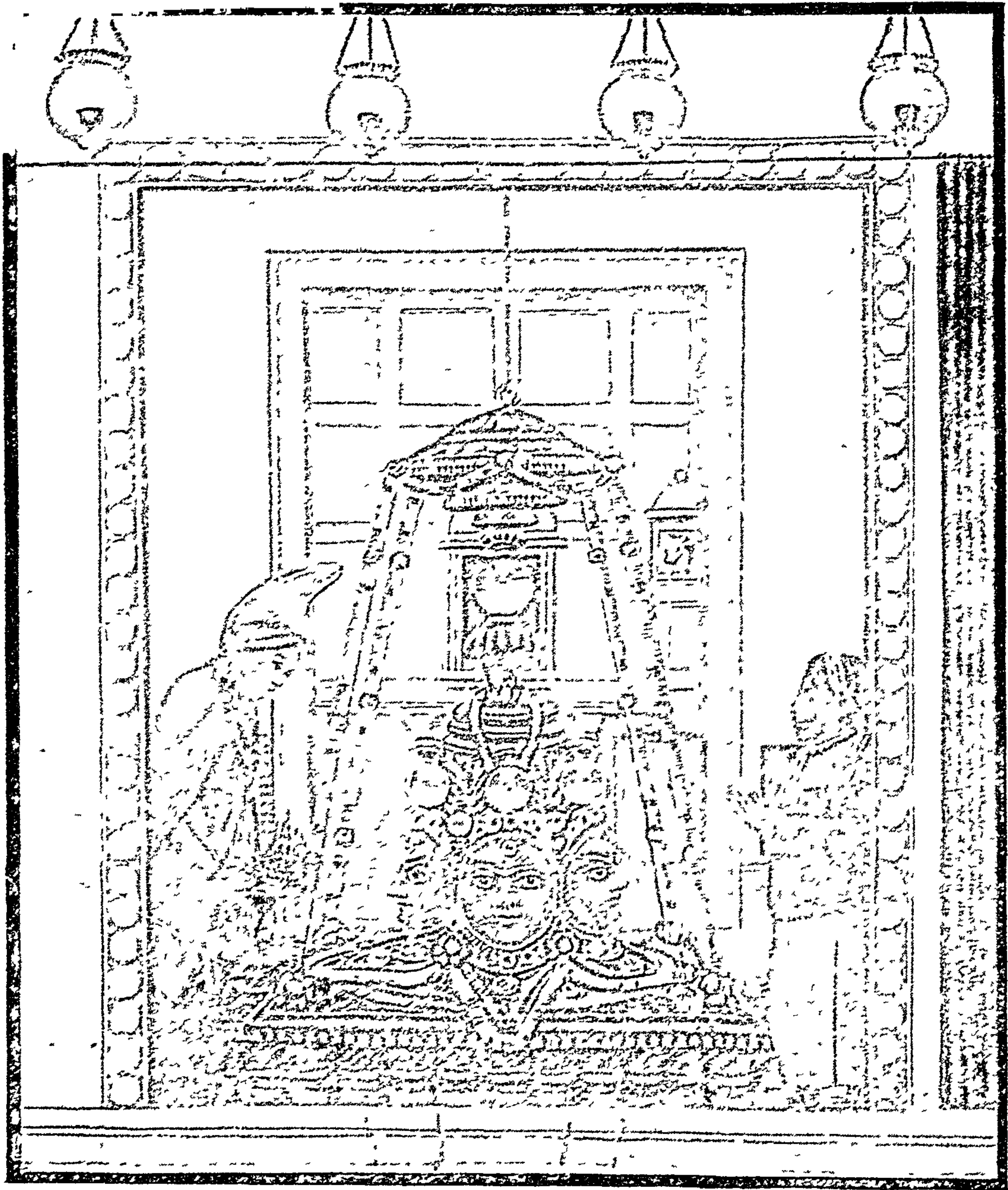
समर्पित

है ।

चरणकिङ्कर

राघवानन्द

❀ भगवान श्री एकलिङ्गजी ❀



श्रीमान् गोस्वामीजी महाराज श्री सवाई राघवानन्दजी एवं महाराणा साहब भूपालसिंहजी बहादुर जी० सी० एस० आई०; के० सी० आई० ई०।

महाराणा साहब के कुलगुरु



गोस्वामीजी महाराज श्री सवाई राघवानन्दजी
कैलासपुरी

प्राक्कथन

मेवाड़ राज्य के स्तम्भ भगवान् एकलिङ्ग (शिव) तथा इनके अनन्य उपासक महर्षि हारीत के विषय में पुस्तक की आवश्यकता मुझे ब्रह्मचारीपन से ही प्रतीत हो रही थी। जगन्नियन्ता एकलिङ्ग के अनुग्रह से आज वही पुस्तक पाठकों के सामने है। इसमें आवश्यक सभी बातों का समावेश करने का प्रयत्न किया गया है। सफलता कहांतक मिली है यह तो पाठक ही जान सकते हैं।

मैं इस कार्य की पूर्ति में योगिराज हारीत के चरणों की प्रेरणा का कृतज्ञ हूँ जिसने मुझे यह आवश्यक कार्य करने की भावना दे इसको पूर्ण करने का बल दिया है।

तदनन्तर मैं बापा के वंश की वर्तमान विभूति, हिन्दूसूर्य मेवाड़ नरेश महाराणा भूपालसिंहजी साहब के लिये मङ्गलकामना करता हूँ, जिन्होंने हस्तलिखित प्रति आद्योपान्त पढवा मुझे यथेष्ट प्रोत्साहन दिया है।

मैं इस कार्य में राय बहादुर ठाकुर राजसिंहजी साहब बेदला, भूतपूर्व सेक्रेट्री क्षत्रिय विद्या प्रचारिणी सभा एवं लेफ्टिनेण्ट कर्नल राव मनोहरसिंहजी साहब होम मिनिस्टर मेवाड़ स्टेट को भी शुभाशीर्वाद देता हूँ कि जिनके हार्दिक सहयोग से यह कार्य पाठकों के सामने आसका है।

आगे मथुरानाथजी पञ्चोली हाकिम देवस्थान, यमुनालालजी दशोरा, जज सेशन कोर्ट और करणीदानजी, हाकिम वाणी विलास को मेरा हृदयसे आशीर्वाद है कि जिनका इस कार्य में सहयोग रहा है।

अन्तमें मैं बालकृष्ण व्यास, शास्त्री, अध्यापक भूपाल नोबल्स हाई स्कूल, प्रधान मन्त्री आदर्श विद्या मन्दिर को आशीर्वाद देताहूँ जिसने पुस्तक के प्रकाशन सम्बन्धी कार्य में मेरी आज्ञा का सुचारु रूप से पालन किया है।

एकलिङ्गचरणचञ्चरीक

गोस्वामी राघवानन्द

बापा के वंश की वर्तमान विभूति



हिंदू सूर्य महाराजाधिराज महाराणाजी श्री सर भूपालसिंहजी बहादुर
जी. सी. एस. आई., के. सी. आई. ई. (मेवाड़ नरेश)

श्री एकलिंग



श्रीशैलराजतनयावदनारविन्द—
सौन्दर्यपानमदघूर्णितनेत्रभृङ्गम् ।
हेरम्बमूर्ध्नि सरसं निहितैकपाणिं,
वन्दे प्रसन्नमनसं प्रभुमेकलिङ्गम् ॥

पं॰ शोभालाल शास्त्री

इतिहासप्रसिद्ध वीरशिरोमणि मेवाड़ के महाराणाओं के आराध्यदेव श्री एकलिङ्गजी (शिव) मेवाड़ के अधिपति और महाराणा उनके दीवान (मन्त्री) कहलाते हैं। इसी कारण बहुत से ताम्रपत्र, शिलालेख, पट्टे, परवानो में दीवाणजी आदेशात् पद लिखा मिलता है। इष्टदेव होने ही के कारण महाराणा साहब शय्यात्याग के पश्चात् सबसे पहले एकलिङ्गजी के चित्रपट के

दर्शन करते हैं। राजकीय अदालतों में भी दैनिक कार्यों में 'श्रीएकलिङ्गजी' शब्द का प्रयोग पहले किया जाता है। महाराणा साहब की सवारी में पहले श्रीएकलिंगजी का चित्रपट हाथीपर सुवर्ण के नागके नीचे रहता है। श्रीएकलिङ्गजी के सवारी के सान कुछ घोड़ों पर सवारी नहीं की जाती है। इष्टदेव का जितना आदर होना चाहिये उतना पूर्णतया यहां दिखाई पड़ता है।

एकलिङ्गजी का स्थान जिसको कैलासपुरी कहते हैं, उदयपुर से १३ माइल की दूरी पर उत्तर में है। महाराणा साहब बड़े बड़े उत्सवों पर अपने इष्टदेव के दर्शनार्थ यहां पधारते हैं और स्वयं कभी कभी पूजा भी करते हैं। श्रद्धा की उत्कटता के कारण और अपने कुल की मर्यादा के अनुसार ज्यों ही महाराणा साहब मन्दिर के प्रवेश द्वार में पहुँचते हैं सोने की छड़ी धारण कर लेते हैं। ग्रीष्म ऋतु में महाराणा साहब चान्दी का घड़ा ले कभी कभी पास की बावड़ीसे जल ला जलहरी में भी ऊंडेलते हैं। राज्य जैसी प्रतिष्ठा प्राप्त होने पर ऐसे विरले ही होते हैं, जो कृतज्ञता मान इस प्रकार भक्तभावना प्रदर्शित करते हों।

मेवाड़ में महाराणा के पूर्ण आस्तिक होने के कारण–'यथा राजा तथा प्रजा' के अनुसार प्रजा भी पूर्ण आस्तिक एवं राज भक्त है।

एकलिङ्गजी की पूजा के लिये तीन चार ब्रह्मचारी व एक गोस्वामी (सन्यासी) जो महाराणाओं के कुलगुरु होते हैं, रहते हैं। पूजन अच्छे अच्छे विद्वानों द्वारा संकलित तान्त्रिक और

वैदिकपद्धति के अनुसार होता है। जिस ढंग से यहां पूजन होता है उस प्रकार भारतवर्ष में बहुत कम स्थानों पर होता है। अच्छे अच्छे तान्त्रिक और वेदज्ञाता इस पूजनपद्धति की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हैं।

भगवान् श्री एकलिङ्गजी के भोग पूजन आदि के लिये राज्य की ओर से लगभग एक लाख रुपयों का वार्षिक व्यय नियत किया हुआ है। इसके अतिरिक्त समय समय पर महाराणा साहिब की ओर से विशेष नैवेद्य का भी प्रबन्ध होता है।

यहां की पूजन व भोग की व्यवस्था समुचित रूप से चलती रहे इसके लिये कुलगुरु के अतिरिक्त राज्य की ओर से एक न्यावत स्थापित है, जिसमें एक नायब हाकिम रहते हैं। वे प्रतिदिन पूजन का निरीक्षण करते हैं। महाराणा साहब को अपने इष्टदेव की पूजन का इतना विशेष ध्यान है कि एक बड़े हाकिम की इसके प्रबन्ध के लिये नियुक्ति की हुई है। स्वयं महाराणा साहिब भी प्रतिदिन यहां की पूजन की रिपोर्ट बड़े चाव से सुनते हैं।

मेवाड़ सरकार ने छोटा स्थान होते हुए भी इष्टदेव (एक-लिङ्ग) की पूजन करने वालों की सुविधा के लिये यहां एक पाठ शाला व आयुर्वेदिक औषधालय स्थापित कर रक्खे हैं।

छोटा कस्बा होते हुए भी जल का ऐसा समुचित प्रबन्ध है कि शायद ही ऐसे छोटे कस्बे में कहीं हो। यहां गहरे दो सुन्दर तालाब हैं, जिनमें एक मन्दिर से दक्षिण पूर्व में है, और उसका

इन्द्रसरोवर नाम है। दूसरा उदयपुर से जाने वाले मार्ग पर मन्दिर से नैऋत्यकोण में हैं, और वह वाघेला कहलाता है। कुम्भलगढ़ की प्रशस्ति के ३६ वें श्लोक के आधार से सिद्ध है कि महाराणा मोकल ने अपने भाई वाघसिंह के नाम पर इसका निर्माण कराया था।

इन्द्रसरोवर के विषय में एकलिङ्गमहात्म्य में लिखा है कि इन्द्रको वृत्रासुर के मारने की ब्रह्महत्या से ज्वर आने लगा तदनन्तर उससे किसी प्रकार मुक्ति न देख बृहस्पति से प्रश्न किया। बृहस्पति के कथनानुसार ब्रह्महत्या के प्रायश्चित की निवृत्ति के लिये एकलिङ्ग की आराधना के लिये इन्द्र ने पर्ण कुटी बना पास में एक तालाव अपने वज्र से खोदा, उसीका 'इन्द्र सरोवर' नाम है। इतना ही नहीं एकलिङ्ग के प्रसन्न होने पर इन्द्र ने इस तालाव को फलदाता करने की प्रार्थना की। तत्पश्चात् उस तालाव का इन्द्रसरोवर नाम रख सम्पूर्ण फलदेने का गौरव एकलिङ्ग ने प्रदान किया।[1]

कैलासपुरी (एकलिङ्गजी) की जन संख्या १००० हजार के लगभग है इसे देखने से पता चल जाता है कि यह स्थान कितना

१एकलिङ्ग उवाच—

'तवनाम्ना सरस्त्वेदं ख्यातिमेष्यति वासव।
अस्मिन् सरसि यः स्नाति सर्वतीर्थफलप्रदे॥
यत् किञ्चित्क्रियते पुण्यं तदक्षयफलं भवेत्।

एकलिङ्गमहात्म्य ९-७१-७२

छोटा है, तथापि मेवाड़ के अधीश (श्री एकलिङ्ग) के यहां विराजमान होने के कारण प्रकाश के लिये राज्य की ओर से बिजली के प्रकाश का समुचित प्रबन्ध है। यात्रियों की सुविधा के लिये यहां एक बड़ी धर्मशाला है।

यात्रियों के आने जाने के कारण प्रायः सुविधा के अनुसार यहां सब चीजें मिल जाया करती हैं।

भगवान् श्री एकलिङ्ग का मन्दिर पहाड़ों के बीच एक सघन घाटी में है। कुछ घर पहाड़ पर व कुछ नीचे बने हुए हैं। प्राकृतिक दृश्य यहां का सब ऋतुओं में मनोमोहक होते हुए भी वर्षा-ऋतु में विशेष सुन्दर प्रतीत होता है। मेवाड़ में यात्रा करने वालों को एक बार राज्य के परमनिधि भगवान् एकलिङ्ग का अवश्य दर्शन करना चाहिये।

इस स्थान का धार्मिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक एवं प्राकृतिक, सभी दृष्टियों से पूर्ण महत्व है।

वायुपुराणान्तर्गत एकलिङ्गमहात्म्य में वर्णित इस स्थान का धार्मिक महत्व विशेषरोचक है।

बृहस्पति ने इन्द्र को ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्त से मुक्ति के लिये कहा कि:—

पृथिव्यां भारते क्षेत्रे मेदपाटेति विश्रुते।
कुटिलायास्तटे रम्ये सर्वतीर्थमये शुभे ॥ ९ ।५१॥
कल्पवृक्षवनान्तस्थे रत्नमण्डपमध्यगे।
देवदानवगन्धर्वयक्षकिन्नरसेविते ॥ ९ ।५२॥

तत्रैकलिङ्गो देवोऽस्ति तमाराधय सत्वरम् ।
विन्ध्याद्रिवासिनीं देवीं पूर्वमाराध्य भक्तितः ॥५३॥
ततस्तुष्टे जगन्नाथे हत्यया न भयं तव ।
इत्युक्तः स जगामाशु तीर्थं नागह्रदं मुने ॥५४॥

भारत में मेवाड़ प्रान्त में सब तीर्थों से युक्त कुटिलानदी के सुन्दर तट पर एकलिङ्गदेव हैं। देवीसहित उनकी तुम आराधना करो। भगवान् एकलिङ्ग के प्रसन्न होने पर तुम्हें ब्रह्महत्या से भय नहीं रहेगा। बृहस्पति के कथनानुसार इन्द्र ने नागह्रद क्षेत्र में जा विन्ध्यवासिनी देवी की स्तुति की। स्तुति से प्रसन्न हो देवी ने इन्द्र को वर मांगने के लिये कहा। इन्द्र ने ब्रह्महत्या से मुक्ति की प्रार्थना की। इस पर देवी ने कहाः—

एकलिङ्गं मया सार्द्धमाराधय शतक्रतो ।
तुष्टेस्मिन् सकलं विश्वं तुष्टं स्याच्च मया समम् । ९ ६४ ।
तपः कृत्वा महाशान्तमेकलिङ्गस्य सन्निधौ ।
विधूतपापो भविता पुनः शक्रत्वमाप्स्यसि ॥

हे इन्द्र ! मेरे साथ एकलिङ्ग की आराधना करो। भगवान् श्री एकलिङ्ग के प्रसन्न होने पर सम्पूर्ण संसार प्रसन्न हो जायगा। एकलिङ्ग के पास उत्तम तप करके पाप रहित हो पुनः इन्द्र हो जाओगे। देवी की आज्ञानुसार इन्द्र ने एकलिङ्ग को प्रसन्न कर ब्रह्महत्या के प्रायश्चित से मुक्ति प्राप्त की। इसी समय इन्द्र ने एक तालाव भी खोदा, जिसका वर्णन ऊपर आगया है।

एकलिङ्गमहात्म्य मे इस स्थान का बड़ा महत्व प्रतिपादन किया है, देखिये:—

इहतीर्थे नरो यात्रां कुर्यात् पर्वणि पर्वणि ।
ब्रह्महत्यादिपापानामुपपातककर्मणाम् ।
क्षयं करोतिभूतेश एकलिङ्गः कलौयुगे ॥ १०।२५ ॥
न तीर्थैर्न तपोदानैर्न यज्ञैर्बहुविस्तरैः ।
यत्फलं प्राप्यते ब्रह्मन्नेकलिङ्गावलोकनात् ॥ २६ ॥

कलियुग में भगवान् श्री एकलिंग इस तीर्थ में यात्रा करने वाले मनुष्यों के ब्रह्महत्यादि पापों का नाश करते हैं। जो फल भगवान् एकलिंग के दर्शन से होता है, वह तीर्थ, तप, दान और बहुत बड़े यज्ञों से भी नहीं होता।

इसके अतिरिक्त 'एकलिंगमहात्म्य' में अन्यत्र भी इस स्थान की यात्रा का विशेष फल दृष्टिगोचर होता है:—

विधिना वा मिषेणापि व्यासंगाद्वा प्रयत्नतः ।
कुर्वन्ति वार्षिकीं यात्रामेकलिंगस्य सन्निधौ ॥
सर्वपापैर्विनिर्मुक्ताः यान्ति शम्भोः परं पदम् ॥ ३२।१४।

विधिसे, मिष से, अथवा आसक्ति से जो एकलिङ्ग की वर्ष में एक वार यात्रा करते हैं, वे सब पापों से मुक्त हो भगवान् शंकर के स्थान को जाते हैं। सहस्रों यात्री श्रद्धा से यहां समय २ पर होने वाले उत्सवों पर आते हैं और मानसिक शान्ति प्राप्त कर अपने को कृतकृत्य मानते हैं।

में अवश्य विद्यमान था। जनमेजय के समय को पांच हजार वर्ष से ऊपर होता है, अतः इस स्थान के अस्तित्व में भी इतनी ही प्राचीनता मानना उचित है।

चाहे इतिहास नाग (सर्प) के यहां एकलिंगजी की आराधना से रक्षित होने के कारण क्षेत्र का नागह्रद नाम न माने तो भी यह निश्चित है कि इस स्थान का बापा रावल से पहिले ही नागह्रद नाम था। जो नाग (सर्प) नहीं किसी नाग जाति के तक्षक नाम के महापुरुष के एकलिंग की आराधना करने पर ही इन स्थानों के नाम पड़े हों। कुछ भी हो यह स्थान बापा रावल के समय से बहुत प्राचीन है और यही प्राचीन शिवलिंग के सामने बापा के गुरु हारीत ने तपस्या कर सिद्धियें प्राप्त की थीं।

इस क्षेत्र के लिये एकलिङ्गमहात्म्य में लिखा है कि यहां तक्षकनाग के निवास के कारण सारे क्षेत्र का नाम नागह्रद पड़ा*। इस क्षेत्र में और तक्षक कुण्ड में स्नान करने से सर्पदंश का भय नहीं रहता है। कुछ भी हो इस विश्वास से अब भी मनुष्य सर्प काटे हुए को इस कुण्ड में स्नान करा सर्पविषमुक्त होते हैं। इस क्षेत्र में कभी किसी मनुष्य की सर्पदंश से मृत्यु नहीं

---

* तेन नागह्रदं नाम ख्यातं तक्षक कुण्डतः।
तक्षकेन पुरा महान् स्वस्य संस्थितिहेतवे।
स्थापितस्तत्र वै चक्रे स्वनाम्ना तीर्थमुत्तमम् ॥
ततः प्रभृति क्षेत्रेऽस्मिन् नास्ति नागभयंमहत्।
स्नानात् सर्वप्रयत्नेन नो नागकुलजं भयम् ॥ २८।१०।११

सुनी। इस बात की पुष्टि के लिये हमने अस्सी अस्सी वर्ष के वृद्धों के मुख से सुना है कि हमारे पिता के समय से ही सर्प काटने से यहां कोई नहीं मरा। इस पते से हमें 'एकलिङ्गमहात्म्य' में वर्णित नागह्रद और तक्षककुण्ड के महात्म्य में विश्वास होता है। क्यों न हो जब कुण्ड में स्नान करने से व जल पान कराने से मनुष्य सर्पविषमुक्ति का प्रत्यक्ष लाभ प्राप्त कर रहे हैं। पर्वतीय प्रदेश होने के कारण सर्पों की अधिकता होने पर भी यहां कभी किसी की सर्पविष से मृत्यु नहीं सुनी तब इस सत्य में किस को सन्देह का अवकाश रह सकता है।

'एकलिंगमहात्म्य' के अनुसार भगवान् एकलिंग का संक्षिप्त कथा भाग इस प्रकार है कि एक समय पार्वती ने ऋपि पत्नियों को संयम में दृढ़ देख परीक्षा के लिये उनको संयम से च्युत करने की शिव से प्रार्थना की। शिव ने भी एक सुन्दर नवयुवक का रूप धारण कर ऋषिपत्नियों की मनोवृत्ति में अन्तर डालने का विचार कर लिया। जब भगवान् शङ्कर स्वयं संयम से च्युत करना चाहें तो फिर किसका साहस है, जो संयम से च्युत न हों। भगवान् शङ्कर इस कार्य में सफल हुए और ऋषिपत्नियों की मनोवृत्ति में अन्तर आ गया। ऋपियों ने जब यह जाना तो वैर प्रतिशोध की भावना से प्रेरित हो शिवको लिंग पतन का श्राप दे दिया। तदनन्तर श्राप वश शिवलिंग का मांधाता की सुन्दर नगरी में पतन हुआ। समय पा धेनु से स्मृत शिवलिंग का मेदपाट देश में पुनः प्रादुर्भाव हुआ। यहीं पर योगीराज हारीत ने शिव

लिंग की पूजा कर शिव को प्रसन्न कर अपने शिष्य बापा को राज्यप्राप्ति का वरदान दिया।

मन्दिर का वर्णन

मन्दिर करीब ५० फूट ऊँचा है इसका व्यास ६० फूट के लगभग है। यह शिखरबन्द, सुन्दर, दृढ़ और श्वेत पाषाणों से बना हुआ है। प्रारम्भ में इसको किसने बनवाया, इसका कोई लिखित प्रमाण तो नहीं मिलता, किन्तु जनश्रुति से प्रसिद्ध है कि सर्व प्रथम राजा बापा (बापा रावल) ने इसे बनवाया था। बापा का समय ऐतिहासिकों के निर्णयानुसार ८ वीं शताब्दी होने से भगवान एकलिंग के मन्दिर का प्रारम्भिक निर्माणकाल भी ८ वीं शताब्दी ही मानना उचित है।

श्री एकलिंगजी की मूर्ति पहिले लिंगाकार थी। आजकल मूर्ति श्यामपाषाणनिर्मित एवं चतुर्मुख है, जिसकी प्रतिष्टा महाराणा रायमलजी ने की थी।*

भगवान् एकलिंग का पश्चिममुख ब्रह्माका, उत्तर मुखविष्णु का पूर्वमुख सूर्यका और दक्षिणमुख रुद्र का मानकर पूजन किया जाता है। इन चारों मुखों के बीच में शिवलिंग व चारों मुखों की ओर चार द्वार बने हुए हैं। पूर्वीय द्वार की ओर भीतर पार्वतीजी की मूर्ति के पास ताक में गणपति की, तथा इसी के सामने दक्षिण द्वार की ओर गंगाजी की मूर्ति के पास कार्तिकेय की मूर्ति भी है।

---

*एकलिंगजी के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति के आधार पर।



भगवान एकलिङ्गजी का मन्दिर और कैलाशपुरी

पूर्वीय द्वार के बाहिर भीतर प्रकाश आने के लिये दीवारों में पत्थरों की जालियाँ लगी हुई हैं। इनके नीचे यमुना और सरस्वती की मूर्तियाँ हैं। निज मन्दिर के चान्दी के किवाड़ों पर सुन्दर बेल बूँटे बने हुए हैं। किवाड़ों पर एक ओर स्वामी कार्तिकेय और दूसरी ओर गणपति की चमर हाथ में लिये हुए पितृभक्ति का आदर्श सामने रखती हुई सुन्दर मूर्तियाँ अंकित हैं

मन्दिर के बाहिर पश्चिम तथा दक्षिण द्वार की ओर कठघरे लगे हुए हैं, जिनके भीतर मुख्य मुख्य व्यक्ति ही प्रविष्ट हो सकते हैं। कठघरे के आगे पश्चिम की ओर सभामण्डप है, जिसमें बैठकर स्त्री पुरुष स्वतन्त्रता पूर्वक भगवान् के दर्शन करते हैं। मण्डप के बीच में चान्दी का नन्दिकेश्वर बना हुआ है। मन्दिर के बाहिर भी पश्चिम की ओर सामने एक पाषाण का तथा इसी के पीछे छतरी में एक पीतल का बड़ा नन्दिकेश्वर बना हुआ है।

मन्दिर के दक्षिण द्वार के बाहिर सामने ताक में वि० सं० १५४५ (ई० सं० १४८८) चैत्र शुक्ला दशमी गुरुवार की महाराणा रायमल के समय की १०० श्लोकों वाली एक प्रशस्ति लगी हुई है। † यह महाराणा हम्मीर से लेकर रायमल तक के राजाओं के इतिहास तथा मन्दिर के पुरातन वृत्तान्त होने से बड़े महत्व की है।

---

† भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स पृ० ११७-२३।

वीरविनोद पृष्ठ ४१७-२२।

इससे कुछ ऊंचाई पर वि० सं० १८१० के बनेहुए ‡ अम्बा-माता, कालिका तथा गणेशजी के अलग अलग मन्दिर हैं। इनमें मूर्तियें अत्यन्त सुन्दर होने से दर्शनीय हैं। कालिका के दश मुख हैं, और उसके सामने श्वेतपाषाण के बने हुए ऐरावत हाथी पर इन्द्र बैठा हुआ है। इन्द्र के आगे एक स्त्री हाथी को चलाने के लिये व एक पीछे चमर हाथ में लिये हुए इन्द्राणी सी बैठी हुई है। सूंडो में लिये हुए कमलपुष्पों से व हाथी की भूल से मिली हुई दोनों ओर अप्सरायें वाद्यादि लिये नृत्य करती हुई साथ चल रही हैं। सब मूर्तियों का एक ही पाषाण में बड़ा ही सुन्दरता पूर्वक निर्माण हुआ है। इसको देखने पर प्राचीन शिल्प की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा किये बिना नही रहा जा सकता, और स्वतः देश की कला पर अभिमान होने लगता है। दर्शन करने वालों को एक बार इस आदर्श शिल्प को अवश्य देखना चाहिये।

इन मन्दिरो के पीछे कुछ पश्चिम की ओर एक प्राचीन मंदिर है, जो नाथों का मन्दिर कहलाता है। यह मन्दिर हारीतवंशज

---

‡ सुतार रुगनाथ सोमपुरा को देवरा तीन परणावतां धरती बीगा २) रेंट चमारवामहे शिवार्पण करने के श्रीमान् गोस्वामीजी महाराज श्री प्रकाशानन्दजी के १८१० असाढ बिद ८ गुरुवार के ताम्रपत्र के आधार पर। देवरा तीन का स्पष्टीकरण उसी के पुत्र जेराम को देवरा कालिकाजी अंबावजी और गणेशजी का परण्यां जींरी गाम सरापा मांहे धरती बीगा २) देने के संवत् १८१२ जेष्ट सुदी ३ के गोस्वामीजी महाराज श्री प्रकाशानन्दजी के ताम्रपत्र से हो जाता है।

महाराणाओं के कुलगुरुओं का बनाया हुआ है। मन्दिर में लगी हुई प्रशस्ति के आधार पर इसका निर्माण काल विक्रम संवत् १०२८ तदनुसार ईसवी सन् ९७१ स्थिर होता है। प्रशस्ति में बहुत अक्षर जाते रहे हैं, फिर भी भाण्डारकरने इसके सम्पादन में बहुत बड़ा प्रयत्न किया है। यह लेख* प्राचीन होने के कारण मेवाड़ के इतिहास में बड़े महत्व का है। मन्दिर में लकुलीश (शिव) की मनुष्याकार मूर्ति है।

निज मन्दिर के बाहिर पीछे की तरफ तुलसीकुण्ड तथा करज कुण्ड (पावटी) नाम के पक्के जलवाले दो सुन्दर कुण्ड हैं। करजकुण्ड के पास कुछ उत्तर की ओर पातालेश्वर नाम के महादेव हैं। उनके पास ही ऊंचाई पर बांसों का समूह है। कहा जाता है कि बापा रावलको गुरु हारीत द्वारा भगवान् एकलिंग के यहीं दर्शन हुए थे। यहीं पास में एक मूर्ति है, जो हारीत ऋषि की कही जाती है। संभव है यह इस स्थान पर उनके तपस्या करने का स्मारक हो।

करजकुण्ड के ऊपर दक्षिण की ओर महाराणाओंके कुल-गुरुओं का समाधि स्थान है। यहां छोटी बड़ी करीब ५ छतरियें बनी हुई हैं। इनमें नर्मदानन्दजी महाराज का समाधिमंदिर जो विक्रम संवत् १९४७ का बना हुआ है, विशेष दर्शनीय है। इस संवत् का इसमें लगा हुआ एक शिलालेख भी है। इसमें गोस्वा-मियों के वंशक्रम का उल्लेख है।

---

* वीर विनोद पृ० ३८१—८२ में प्रकाशित।

समाधिस्थान से ऊंचे पश्चिम की ओर नाथों के मिन्दर के पीछे एक विशाल शिवालय है। इसमें लगे हुए संवत् १७०८ वैशाख शुक्ला ५ गुरुवार के शिलालेख से इसका निर्माणकाल भी यही स्थिर होता है। इस शिलालेख में भी गोस्वामियों के वंश का वर्णन है।

इस मंदिर के पास उत्तर की ओर एक मन्दिर के बाहिर "१७७४ रा भादवा सुदी १३ मने गुंसाईजी श्री प्रगासानन्दजी" खुदा हुआ है। इससे संभव है यह मन्दिर उस समय बना हो।

भगवान् एकलिंग के मन्दिर के पीछे और उत्तर की ओर शिखरबन्द कई छोटे बड़े मन्दिर तथा देवलियाँ बनी हुई हैं। इनमें महाराणा कुम्भाका बनवाया हुआ* विष्णुमन्दिर, (मीराबाई का मन्दिर) गोवर्द्धननाथ, लक्ष्मीनारायण, सीताराम, सोमनाथ देवेश्वर एवं गणपति का मन्दिर विशेष उल्लेखनीय है। मन्दिर के चारों ओर अहाते में ही छोटे बड़े सब लगभग ७० मन्दिर हैं।

मन्दिर के पश्चिम की ओर भव्य एवं विशाल बना हुआ महाराणाओं के कुल गुरु गोस्वामियों का निवास स्थान मठ है। इसके अतिरिक्त मन्दिर के अहाते में ही ब्रह्मचारियों के रहने के लिये कई मकान बने हुए हैं। यह सब वर्णन मन्दिर के अहाते का है। अहाते के चारों ओर मन्दिर की रक्षा के लिये महाराणा मोकल

* गौरीशंकरजी का राजपूताने का इतिहास पृष्ठ ३२६

का बनवाया हुआ ‡ दृढ़ परकोटा है। मन्दिर के पीछे परकोटे के बाहिर ईशान कोण में हारीत राशिकी गुफा, हारीत राशि की मूर्ति, १५०२* एवं विन्ध्यवासिनी देवी तथा भैरव की प्राचीन मूर्तियाँ दर्शनीय हैं।

मन्दिर का जीर्णोद्धार

मुसलमानी शासन काल में अन्य अनेकों मन्दिरों की भांति श्रीएकलिंगजी के मन्दिर पर भी कई आक्रमण हुए, और मेवाड़ के महाराणाओं के द्वारा उसकी रक्षा एवं समय समय पर उसका जीर्णोद्धार भी होता रहा। महाराणा मोकल के राज्य काल में (वि० सं० १४७८ से १४९० तक) गुजरात के बादशाह अहमदशाह ने विपुल सेना के साथ मेवाड़ पर आक्रमण किया वह जातीय द्वेष के वशीभूत होकर श्रीएकलिंगजी के मन्दिर पर भी चढ़ आया। महाराणा मोकल ने उससे रक्षा कर मन्दिर को भावी आक्रमणों से सुरक्षित रखने के लिये चारों ओर एक सुदृढ़ कोट बनवा मंदिर का जीर्णोद्धार भी करवाया।

महाराणा कुम्भा के समय में भी (वि० सं० १४९० से १५२५

---

‡ येन स्फाटिकसच्छिलामय इव ख्यातो महीमण्डले,
प्राकारो रचितः सुधाधवलितो देवैकलिंग .. .. ।
...............सत्कपाटविलसद्द्वारत्रयालंकृतः,
कैलासं तु विहाय शम्भुरकरोद्यत्राधिवासे मतिं ॥ १६ ॥
(वि० सं० ११८५ श्रावण शुक्ला ५ का श्रृंगी ऋषि का शिलालेख)

* मूर्ति पर खुदे हुए संवत के आधार पर।

तक) निंकासो इस मन्दिर का सुन्दरता पूर्वक निर्माण हुआ। यह कुम्भलमेरपुर के सासादेव की प्रशस्ति के श्लोकों में वर्णित है।†

महाराणा कुम्भा के पुत्र उदयकर्ण के समय में (वि० सं० १५२५ से १५३०) तक यह मन्दिर गिर गया था उसको महाराणा रायमल‡ (वि० सं० १५३० से १५६५) ने पीछा बनवाया और कितने एक गांव जो महाराणा उदयकर्ण के समय में खालसे हो गये थे, वे पीछे भेट किये। तब से यह मन्दिर इसी रूप में अब तक विद्यमान है।

दर्शनीय स्थान

मन्दिर के अहाते से थोड़ी दूर इन्द्र सागर की पाल पर गोविन्ददेवजी और सीतारामजी के भव्य दो विष्णु मन्दिर तथा उनके पास ही महाराणा साहब के मरदानी और जनानी दो अलग अलग महल बने हुए हैं। पाल पर भगवान् शिव के भी दो मन्दिर हैं। पाल पर स्नान करने के लिये घाट बने हुए हैं। पाल के नीचे भगवान् एकलिंगजी की एक बगीची है। पाल से

---

† भानुबिम्बमिलितोच्चपताकं सुन्दरं पुनरकारयन्नृपः ॥ २४० ॥
इत्थं चारु विचार्य कुम्भनृपतिस्तत्रैकलिंगे व्यधा—
द्रम्यान् मंडपहेमदण्डकलशान् त्रैलोक्यशोभातिगान् ॥ २४१ ॥
(कुम्भल मेर की प्रशस्ति)

‡ उद्धृत्योन्नतमेकलिंगनिलयं ग्रामांश्च तान् पूर्वव—
द्दत्वा संप्रति राजमल्लनृपतिर्नौवापुरं चार्पयत् ॥ ८६ ॥
(एकलिंगजी के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति)

कुछ दूर एक पहाड़ी पर अर्बुदा माता का मन्दिर है। यहां श्रावणी अमावस्या को मेला लगता है। इन्द्रसागर से दूर दक्षिण पूर्व में ऊंची एक पहाड़ी पर राष्ट्रसेना (राठासण) देवी का एक भव्य मन्दिर है। वहां राज्य की ओर से पूजन आदि के लिये परिचारक नियत किये हुए हैं। यहां जाकर दर्शन करना युवकों के लिये भी कष्टसाध्य है। यहां भाद्रपद कृष्णा १ को मेला लगता है। एकलिंगमहात्म्य में भी इसका वर्णन है।

मन्दिर से ईशान कोण में कुछ दूरी पर बापारावल नामक प्राचीन समाधि स्थान है। वहां मन्दिर बना हुआ है। पास ही पर्वतीय एक झरना बड़ा सुहावना बहता रहता है। एकान्त चाहने वाले योगियों के लिये महाराणा साहब की तरफ से नवीन भव्य भवन भी बने हुए हैं। बापा के इस समाधि स्थान से बापा के मेवाड़ से बाहिर अन्यत्र कहीं परलोक प्रस्थान करने की जो बात कही जाती है, वह निर्मूल सिद्ध होती है।

मन्दिर से थोड़ी ही दूर नैऋत्य कोण में बाघसिंह के स्मारक महाराणा मोकल के बनवाये हुए बाघेला नामक तालाब की ओर, मेवाड़ के राजाओं की पुरानी राजधानी नागदा ग्राम है। इसको शिलालेखों में 'नागद्रह' और 'नागह्रद' लिखा है। राजधानी होने से यहां प्राचीन काल में शिव, विष्णु आदि के अनेक मन्दिर बने हुए थे। उनके कुछ ध्वंसावशेष अब तक भी दृष्टिगोचर होते हैं। इस समय यहां अवशिष्ट मन्दिरों में से दो संगमरमर के बने हुए हैं। ये सास बहू के मन्दिर कहे जाते हैं। इनमें

से दक्षिण की तरफ के सास के मन्दिर की खुदाई बहुत ही सुन्दर है। इस मन्दिर का निर्माणकाल ऐतिहासिकों ने ११ वीं शताब्दी अनुमान किया है। पास ही में एक विशाल जैन मन्दिर भी भग्नावशिष्ट दशा में खड़ा है, जिसको 'खुमाण रावल का देवरा' कहते हैं। इसमें भी खुदाई सुन्दर है। पास में दूसरा जैन मन्दिर है, जो अदबदजी का मन्दिर कहलाता है। इसके भीतर ६ फूट ऊंची शान्तिनाथ की बैठी हुई मूर्ति है। इस अद्भुत मूर्ति के कारण ही मनुष्यों ने इसका नाम अदबदजी (अद्भुत जी) रख लिया है। इस मूर्ति के लेख से ज्ञात होता है कि महाराणा कुम्भा के राज्य समय वि० सं० १४६४ (ई० स० १४३७) में ओसवाल सारंग ने यह मूर्ति बनवाई थी। इन मन्दिरों के अतिरिक्त यहां और भी कई छोटे छोटे मन्दिर हैं। इतिहास में रुचि रखने वालों के लिये यह स्थान बड़े महत्व का है।

यहीं एक गौशाला है, जिसमें सुन्दर एवं पुष्ट गायें और बैल हैं। उनको देखने पर प्राचीन गौसम्पत्ति वाले भारत का स्मरण हो पड़ता है। यहां के दुग्ध घृत आदि भगवान् एकलिंग के नैवेद्य में काम आते हैं।

इस प्रकार अब भगवान् एकलिंग का जो शिव का ही नामान्तर है वर्णन समाप्त होने पर शिव पूजन का शास्त्रीय आधार प्रतिपादन करते हैं, जिससे एकलिंग (शिव) पूजन के विषय में किसी प्रकार संदेह न रहे।

पुराणों में शिव

आज संसार सभी प्राचीन धार्मिक बातों को निराधार बता मनुष्यों को प्राचीन आध्यात्मिक पद्धति से विमुख कर महर्षियों के अनुभूत सुपरिष्कृत-सिद्धान्तों से वञ्चित रखने में ही विशेषता समझता है। सभी बातें प्राचीन अथवा धार्मिक होने ही से त्याज्य हों यह युक्ति संगत नहीं। हां, यह संभव हो सकता है कि समय के प्रभाव से प्रवर्तकों के सिद्धान्तों के विरुद्ध पद्धति में कुछ परिवर्तन हो विकृति आगई हो और उसमें सुधार करने की आवश्यकता हो। इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं कि आध्यात्मिक बातों का मौलिक आधार है ही नहीं अतः वे उपेक्षणीय हैं।

दुर्भाग्य वश आज भारतीय जनता पल्लवग्राही अपूर्णज्ञान के कारण आध्यात्मिक विषय को जो भारत का प्राण है अवहेलना की दृष्टि से देखती है। फलतः हम आधुनिक भारत को तीन भागों में बटा हुआ देखते हैं। एक भाग को तो प्राचीन धार्मिक पद्धति का पुराणों में आधार देख संतोष हो जाता है। दूसरा भाग पुराणों में विश्वास ही नहीं करता, केवल वेद अथवा उपनिषदों में प्रतिपादित विषयों पर ही विश्वास करता है। तीसरा भाग वैज्ञानिक युग में जन्म लेने के कारण भौतिक वाद को प्रधानता दे प्रत्यक्ष दर्शन अथवा इतिहास तथा पुरातत्व सम्बन्धी शोधों पर ही विश्वास करता है। उसकी दृष्टि में आध्यात्मिक विषय का केवल ऐतिहासिक महत्व (समय निर्णय) के अतिरिक्त और कोई स्थान नहीं। शिव आदि देव हैं। शास्त्रों में इनकी

गुण गाथायें बहुत से स्थलों पर दृष्टिगोचर होती हैं।

पहले पुराण आदि शास्त्रों में श्रद्धा रखने वालों के संतोष के लिये उनमें प्रतिपादित शिव का स्वरूप, महत्व आदि का दिग्दर्शन कराने का प्रयास किया जाता है।

भगवान शिव अनादि देव हैं। इनके विषय में जो कुछ कहा जाय थोड़ा है। यथामति जिसने जितना समझा उसने उतना इनका गुणगान किया। शास्त्रों में शिव का वर्णन देख हमको इस निर्णय पर नहीं पहुँच जाना चाहिये कि शिव की महिमा इतनी ही है। गुण वर्णन करते हुए ग्रंथकर्ताओं की लेखनी का विराम उनके गुणों की इयत्ता से नहीं, अपितु विशेष वर्णन न कर सकने की शक्ति ही के कारण हुआ है। शिव महिमा-वर्णन करने में साधारण मनुष्य की तो बात ही क्या है, स्वयं बाल ब्रह्मचारी भीष्म भी युधिष्ठिर के प्रश्न करने पर अपना असामर्थ्य प्रकट करते हैं।

अशक्तोऽहं गुणान् वक्तुं महादेवस्य धीमतः।
योहि सर्वगतोदेवो न च सर्वत्र दृश्यते॥

महाभारत अनु० १४।३

जो सब में रहते हुए भी कहीं किसी को दिखाई नहीं देते, उन महादेव के गुणों का वर्णन करने में मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। आगे उन्होंने फिर कहा कि किसी भी मनुष्य की शक्ति नहीं जो शिव महिमा कह सके:—

"कोहि शक्तो गुणान् वक्तुं देवदेवस्य धीमतः ।
गर्भजन्मजरायुक्तो मर्त्यो मृत्युसमन्वितः ॥"

महाभारत अनु० १४ ।

इस प्रकार भीष्म का शिवमहिमा कह सकना मनुष्य की शक्ति के बाहर है ऐसा प्रतिपादन करने पर लोकोत्तर पुरुष भगवान् श्री कृष्ण से यही प्रश्न किया गया तो उत्तर है कि:—

"न गतिः कर्मणां शक्या वेत्तुमीशस्य तत्वतः ।
हिरण्यगर्भप्रमुखाः देवाः सेन्द्राः महर्षयः ।
न विदुर्यस्य भवनमादित्याः सूक्ष्मदर्शिनः ॥"

सूक्ष्मदर्शी महर्षि और ब्रह्मा इन्द्र आदि देव भी शिवतत्व जानने में असमर्थ हैं। ऐसी स्थिति में एक सामान्य पुरुष का शिव महिमा के लिये लेखनी उठाना सर्वथा दुस्साहस वा अनधिकार चेष्टा है। जैसे अनन्त आकाश को किसी पक्षी के नहीं नाप सकने पर भी अपनी सामर्थ्य के अनुसार पक्षी आकाश में उड़ता ही है। उसी प्रकार मेरा कुछ शिवमहिमा के विषय में कहना अनुचित न होगा।

महाभारत, वाल्मीकि रामायण और पुराण आदि सभी धार्मिक ग्रंथों में किसी न किसी रूप में शिवतत्व वर्णित है। महाभारत अनुशासन पर्व में आराधना से प्रसन्न हो शिव के सम्मुख प्रकट होने पर भगवान् श्रीकृष्ण ने शिव को त्रिगुणात्मक ब्रह्म प्रतिपादन करते हुए कैसी उत्तम स्तुति की है।

नमोऽस्तुते शाश्वत सर्वयोने, ब्रह्माधिपं त्वामृषयो वदन्ति ।
तपश्च सत्त्वञ्च रजस्तमश्च, त्वामेव सत्यञ्च वदन्ति सन्तः ॥
त्वया सृष्टमिदं कृत्स्नं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।

हे शाश्वत पुरुष ? सर्व कारण । आपको मेरा प्रणाम हो । ऋषि महर्षि आपको प्रकृति के अधीश, तपःस्वरूप, सत्व रज तमोगुण स्वरूप, एवं सत्य प्रतिपादन करते हैं । आपने ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत् को बनाया है । शिव महिमा के विषय में जिसमें स्वयं श्रीकृष्ण वक्ता हैं, शिव को त्रिलोकाधिपति समझने में किसको सन्देह का अवकाश रह सकता है । इसके अतिरिक्त अनूठी और प्रामाणिक उक्ति भक्तहृदय के लिये क्या हो सकती है ?

इस प्रकार महाभारत में कई स्थलों में शिव तत्व का विवेचन किया गया है, किन्तु विस्तार भय से सब का उद्धरण नहीं किया जा सकता । आशा है पाठक स्थाली पुलाक न्याय से शास्त्रों में शिवतत्व का आधार पा संतोष करेंगे ।

श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कन्ध के सप्तम अध्याय में, देव और दैत्यों के समुद्र मन्थन से विष निकलने पर जब समस्त संसार जलने लगा, तब रक्षा के लिये प्रजापति गण प्रार्थना करते हैं:—

गुणमय्या स्वशक्त्यास्य सर्गस्थित्यप्ययान् विभो ।
धत्से यदा स्वदृग्भूमन्ब्रह्मविष्णुशिवाभिधाम् ।

त्वं ब्रह्म परमं गुह्यं सदसद्भावभावनः ।
नानाशक्तिभिराभातस्त्वमात्मा जगदीश्वरः ॥

हे प्रभो ? आप अपनी तीनों गुणों वाली शक्ति से संसार की उत्पत्ति, स्थिति और लय करते हो तब ब्रह्मा, विष्णु और शिव नाम धारण करते हो। तुम गुप्त परब्रह्म हो, सदसत् समस्त वस्तुएं तुम्हीं से उत्पन्न होती हैं। तुम ईश्वर हो, नाना प्रकार की शक्तियों से जगत् में प्रकाशित हो रहे हो।

इस प्रकार शिव का साकार निराकार एवं विश्वरूप प्रतिपादन करने पर प्रजापतियों ने फिर कहा है कि:—

'यत्तच्छिवाख्यं परमात्मतत्वं,
देव स्वयं ज्योतिरवस्थितिस्ते ।'

हे देव ? शिव नाम से वर्णित स्वयं ज्योतिः स्वरूप परमात्मतत्व ही आपकी स्वाभाविक अवस्था है। श्री मद्भागवत के इन उद्धरणों से हमारे सामने शिव सम्पूर्ण शक्तियों से युक्त संसार के निर्माण, पालन और नाश करने वाले स्वयं ज्योतिःस्वरूप परमात्मा के रूप में आते हैं। ऐसी स्थिति में शिव को तमोगुणी देव कहना परब्रह्म का अनादर करना है।

शास्त्रों में शिव को ब्रह्म वर्णन कर मुक्ति दाता प्रतिपादित किया है।

यदव्यक्तं परं ब्रह्म वेदान्तप्रतिपादितम् ।
तदेवेदं विजानीहि शिवइत्यक्षरद्वयम् ॥

तारकं ब्रह्म परमं शिव इत्यक्षरद्वयम् ।
नैतस्मादपरं किञ्चित् तारकं ब्रह्म सर्वथा ॥

(शिव रहस्य सप्तमांश अ० २३)

जो अव्यक्त ब्रह्म वेदान्त में प्रतिपादित है वह दो अक्षरों वाला शिव जानों। उद्धार करने वाला दो अक्षर वाला शिव परब्रह्म है। इससे अतिरिक्त दूसरा उद्धार करने वाला सर्वथा कोई ब्रह्म नहीं है। केवल शिव का महत्व वर्णन करने वाले शास्त्रों ही में भगवान् शिव को ब्रह्म प्रतिपादित नहीं किया है, अपितु बहुत से अन्य पुराणों में भी शिव को अनादि देव तारक कहा है। मनुष्यों को संसार सागर से पार होने के लिये शिव स्मरण का संकेत भी मिलता है। सौर पुराण अध्याय ४७ में वर्णित है:—

निकटा एव दृश्यन्ते कृतान्तनगरद्रुमाः ।
शिवं स्मर, शिवंध्याय, शिवं चिन्तय सर्वदा ॥

सौर पुराण अ० ४७

यमराज का स्थान निकट है, अतः शिव का स्मरण ध्यान और चिन्तन करो। भगवान् शिव को शीघ्र प्रसन्न होने ही के कारण शास्त्रों में आशुतोष कहा है। कलिकाल में तो उद्धार के लिये मनुष्यों की प्रवृत्ति कठिन उपायों में असम्भव समझ, शास्त्रों में आशुतोष शिव के स्मरण का ही विधान है:—

ब्रह्मा कृतयुगेदेवस्त्रेतायां भगवान् रविः ।
द्वापरे दैवतं विष्णुः कलौ देवो महेश्वरः ॥

कूर्म पुराण अध्याय १८

सत्ययुग में ब्रह्मा, त्रेता में भगवान् सूर्य, द्वापर में विष्णु, और कलियुग में देव शिव का ही स्मरण करना चाहिये।

नास्ति शर्वसमो देवो नास्ति शर्वसमा गतिः।
नास्ति शर्वसमो दाने नास्ति शर्व समोरणे॥

(अनुशासन पर्व १५।११)

शिव के समान देव नहीं है, शिव के समान गति नहीं है, शिव के समान दाता नहीं है, शिव के समान वीर नहीं है।

वाल्मीकि रामायण में शिव भक्त रावण का शिवपूजन वर्णित है। देखिये:—

यत्र यत्र च यातिस्म रावणो राक्षसेश्वरः।
जाम्बूनदमयं लिङ्गं, तत्र तत्र स्मनीयते॥
वालुकावेदिमध्येतु तल्लिङ्गं स्थाप्य रावणः।
अर्चयामास गन्धाढ्यैः पुष्पैश्चागरूगन्धिभिः॥

राक्षसों का राजा रावण जहां जहां जाता था वहीं वहीं सुवर्ण की लिग रूप शिवमूर्ति साथ ले जाया करता था। वहां वह रेत की वेदी वना कर उस मूर्ति को स्थापित कर उत्तम गन्ध वाले पुष्पादि से उसका पूजन किया करता था।

स्कन्दपुराण में शिव के स्नान के जल का महत्व कितना अच्छा प्रतिपादन किया गया है:—

जलस्य धारणं मूर्ध्नि विश्वेशस्नानजन्मनः।
एष जालन्धरो बन्धः समस्तसुरदुर्लभः॥

स्कन्द पुराण काशी खण्ड ४१।१८

भगवान् शंकर के स्नान के जल को मस्तक में धारण करना, योगशास्त्र प्रतिपादित जालन्धर बन्ध के समान पुण्यजनक है और समस्त देवताओं को भी दुर्लभ है।

जब भगवान् शङ्कर शास्त्रों में त्रैलोक्याधिपति प्रतिपादित है, तो क्यों न स्नान जल से समस्त पाप नष्ट होवें।

महाभारत में भूतपति शिवजी को सब लोकों के रचयिता सब प्राणियों के उपास्यदेव तथा पुराणपुरुष प्रतिपादन किया है। देखिये (महाभारत भीष्म पर्व)

'यत्र भूतपतिः सृष्ट्वा सर्वलोकान् सनातनः।
उपास्यते तिग्मतेजो वृतो भूतैः सहस्रशः॥

भीष्म पर्व।

ईश्वरश्चेतनः कर्ता पुरुषः कारणं शिवः।

शान्ति पर्व।

सएष भगवानीशः सर्वतत्त्वादिरव्ययः।
सर्वतत्त्वविधानज्ञः प्रधानपुरुषेश्वरः॥

अनुशासन पर्व।

भगवान् श्रीकृष्ण ने महाभारत में भगवान् आशुतोष की स्तुति की है, जिसमें उनको पूर्ण ब्रह्म मान सृष्टि का निर्माता प्रतिपादन किया है।

त्वं वै ब्रह्मा च रुद्रश्च वरुणोग्निर्मनुर्भवः।
धाता त्वष्टा विधाताच त्वं प्रभुः सर्वतोमुखः॥

त्वत्तोजातानि भूतानि सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः ।
सर्वतः श्रुतिमांल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥

इत्यादि वाक्यों से उनकी स्तुति कर साक्षात्कार से अपने को सफल माना । द्रोण पर्व में अभिमन्यु के शोक से कातर अर्जुन की प्रतिज्ञा पूर्ण कराने के लिये भगवान् कृष्ण ने महादेव की स्तुति की है ।

नमो विश्वस्य पतये महतां पतये नमः ।
नमः सहस्रशिरसे सहस्रभुजमृत्यवे ॥
सहस्रनेत्रपादाय नमोऽसंख्येयकर्मणे ।
भक्तानुकम्पिने नित्यं सिध्यतां नो वरः प्रभो ॥

महाभारत द्रोण पर्व ८०।६३।६४

पाराशर पुराण के निम्नलिखित उद्धरणों को देखने से भगवान् शंकर का कैसा उत्तम पद जगत्कारण दृष्टिगोचर होता है ।

सर्वकारणमीशानः साम्बः सत्यादिलक्षणः ।
न विष्णु र्न विरञ्चिश्च न रुद्रो नापरः पुमान् ॥
श्रुतयश्च पुराणानि भारतादीनि सत्तम ।
शिवमेव सदा साम्बं हृदि कृत्वा ब्रुवन्तिहि ॥

अर्थ—तीनों गुण वाले सत्य एवं ज्योतिःस्वरूप अम्बिका-सहित महादेव सम्पूर्ण चराचर जगत के कारण हैं । इसके अतिरिक्त ब्रह्मा विष्णु आदि और कोई नहीं । वेद पुराण और महा-

शिवपुराणादि शिवमहिमा प्रतिपादक ग्रन्थों में ही शिव महिमा वर्णित हो यह नहीं, श्रीमद्भागवत आदि वैष्णव पुराणों में भी ब्रह्म प्रतिपादन करते हुए शिव की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की गई है।

इनके अतिरिक्त भी पुराणों में शिवमहिमा के वचन मिलते हैं। देखिये:—

सर्वस्मादधिकं ब्रूयाद् भगवन्तमुमापतिम्,

(आदित्य पुराण)

अर्थात—सबसे भगवान् शंकर को विशेष समझना चाहिये। कूर्म पुराण में शिव को सांसारिक जीवों का मोक्षदाता उत्तम प्रकार से बताया, जो पढ़ने से विदित हो सकता है। यथा—

ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताश्च देवदेवस्य शूलिनः।
पशवः परिकीर्त्यन्ते संसारवशवर्तिनः॥
तेषां पतित्वाद् देवेशः शिवः पशुपतिः स्मृतः।
ब्रह्मादि स्तम्बपर्यन्तान् पशून् बद्ध्वा महेश्वरः॥
पाशैरेतैः पतिर्देवः कार्यं कारयति स्वयम्।
सएव मोचकस्तेषां भक्त्या सम्यगुपासितः॥

(कूर्म पुराण)

ब्रह्मादि देवोंसे लेकर स्थावर तक समस्त सृष्टि पाशसे बद्ध होने के कारण पशुरूप है। महादेव उनके पति होने से पशुपति कहे जाते हैं। भक्ति से उपासित वह महेश्वर सब देवताओं तथा सब मनुष्यों को मोक्ष देता है। कूर्म पुराण में बहुत से स्थलों पर शिवमहिमा प्रतिपादित है। यथा:—

गोप्ता चैव जगच्छास्ता शक्तः सर्वो महेश्वरः

(कूर्मपुराण)

सर्व शक्तिमान् महेश्वर जगत् के पालन करने वाले तथा शासन करने वाले हैं। इसी प्रकार स्कन्द पुराण में विष्णु ने भी महादेव की स्तुति की है:—

स्रष्टा त्वं सर्वजगतां रक्षिता सर्वदेहिनाम्।
हर्ताच सर्वभूतानां त्वां विनैवास्ति कोऽपरः॥
अणूनामप्यणीयांस्त्वं महांस्त्वं महतामपि।

(स्कंदपुराण १-५)

आदित्य, विष्णु पुराणों में और सभी प्रामाणिक शास्त्रों में शिवमहिमा भरी पड़ी है, किन्तु ग्रन्थविस्तारभय से सभी प्रसंग उद्धृत करना आवश्यक नहीं। संक्षेप से जो कुछ उपस्थित किया गया है उससे सहृदयजन संतोप करेंगे।

हिन्दुसंस्कृति के रक्षक भक्तशिरोमणि महाकवि गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी परम कारुणिक भगवान् शंकर की महिमा वर्णन करने में अपना असामर्थ्य प्रकट कर भक्तो को शंकर भजन का क्या ही उत्तम संकेत दिया है:—

चरित सिन्धु गिरिजारमण, वेद न पावइ पार।
वरनै तुलसीदास किमि, अति मतिमंद गंवार॥
जरत सकलसुरवृन्द, विपमगरल जेहि पान किय।
तेहि न भजसि मतिमन्द, को कृपाल शंकर सरिस॥

तुलसीदास की ही तरह कालिदास को भी अपने कुमार-सम्भव काव्य में भगवान् शंकर की मुक्तकण्ठ से महिमा वर्णन कर, अन्त में यही कहना पड़ा कि 'नसन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः' अर्थात् भगवान् शंकर की वास्तविक बात जानने वाले कोई नहीं हैं।

इस प्रकार शास्त्र, भक्त, और महाकवि के वचनों पर श्रद्धा रख हमें आशुतोष शंकर के चरणों पर अपने आपको न्यौछावर कर देना चाहिये, जिससे मनुष्यजन्म सफल हो। इससे विपरीत होने पर सहसा योगिराज चतुरसिंहजी का यह दोहा स्मृतिपथ में आजाता है जो वास्तविकता की ओर संकेत करता है—

मानुष मोको विरंचि प्रभु, विमुख आपसो कौन।
तो मानुषता को कहो कौन पदारथ दीन॥

वेद और उपनिषदों में शिव

वेदों में शिव के पर्यायवाची शब्द 'रुद्र' का जो 'शिव' के समान है एक वचन और वहु वचन दोनों में प्रयोग मिलता है। व्हिटनी (Whitney) तथा जान डाउसन (gohn Dowson) प्रभृति पाश्चात्य वैदिक साहित्य के ज्ञाताओं का कथन है कि महादेव शिव और उनके रुद्र नामक मूर्तियों का विकास भी इसी शब्द से हुआ है।

वेदो में कुछ स्थल ऐसे भी हैं जिनमें रुद्र शब्द अग्नि के लिये भी प्रयुक्त हुआ है। निरुक्त के 'अग्निरपि रुद्र उच्यते' अग्नि भी रुद्र कहा जाता है, इस अर्थ के अनुसार अग्नि के लिये भी रुद्र शब्द का प्रयोग हो सकता है अतः कुछ मंत्र अग्नि के लिये भी हैं। कुछ लोग अग्नि के लिये ही रुद्र शब्द का प्रयोग कहते हैं यह उचित नहीं, क्योंकि शिव में प्रर्यायवाची शब्द हर, महादेव, भव, शर्व शिव, शम्भु आदि शब्दों का वहुत से स्थलों पर प्रयोग हुआ है, अतः कुछ मंत्रों को छोड़ मानना ही पड़ेगा कि रुद्र शब्द शिव के लिये ही आया है।

रुद्र शब्द का भिन्न भिन्न आचार्यों ने भिन्न २ अर्थ किया है। सायण ने रुद्र शब्द का अर्थ संहारक देव व परमेश्वर दोनों किया है, ये नीचे के उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है—

'रुद्रः संहर्तादेवः' (अथर्व० १।१९।३।)

'जगत्स्रष्टासर्वं जगदनुप्रविष्टः रुद्रः,' (अथर्व० ७।९२।१।)

रुद्रः परमेश्वरः (अथर्व० ११।२।३।)

सायणाचार्य का यह अर्थ अन्यान्य भाष्यकारों को भी मान्य है। व्याकरण के अनुसार रुद्र शब्द की उत्पत्ति आचार्यों ने बताई है वह निम्न लिखित है और रुद्र शब्द महादेव वाचक ही सिद्ध होता है।

'तापत्रयात्मकं संसारदुःखं रुत्। रुदं द्रावयतीति रुद्रः।'

सांसारिक दुःखों का जो नाश करता है वह रुद्र है।

आधुनिक पाश्चात्य वेदविशारदों में मेकडोनल भी रुद्र शब्द का अर्थ 'शङ्कर' ही करता है। वह अपनी वैदिक रीडर में लिखता है:—

रुद्र शानदार अत्यन्त बलवान् तेज और दुर्धर्ष है। वह जरा-रहित, स्थिरयौवन है, विश्व का स्वामी और पिता है। अपने शासन और सर्वाधिपत्य के बल से वह मनुष्य देवताओं के कर्मों को भलीभाँति जानने वाला है। वह दानी कल्याण कर्ता और आशुतोष है। उसे बहुधा अमङ्गलकारक माना गया है, क्योंकि उसका वर्णन करने वाले सूक्तों में उसके भयङ्कर अस्त्र एवं क्रोध का उल्लेख किया गया है। वह अत्याचारी नहीं है, वह कष्टों से रक्षा करता तथा वर भी देता है। उसके पास हजारों औषधियां हैं और वह वैद्यों का भी वैद्य है।

प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् डाक्टर कुन्ह ने लिखा है—

'रुद्र रात्रि, शीतकाल तथा तूफान का देवता है।'

डाउसन लिखते हैं कि रुद्र देवता रोगप्रसारकएवं संहारक

भी समझा जाता है। साथ ही यह आरोग्यदायक एवं सुखदाता भी माना जाता है। यही मूल अंकुर है जिसे आगे चल कर शिव का रूप प्राप्त हो गया है।

अब हम वेदों और उपनिषदों के उद्धरणों से यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि शिव आदिदेव हैं, तथा वेदविहित देव हैं। जिससे यह कहने का अवसर न मिले कि भगवान् शंकर वेद विरुद्ध देव व पौराणिकों के कल्पनाप्रसूत देव हैं, अतः शिवपूजन वैदिक विधि न होने से वेदों पर विश्वास रखने वालों को विशेष मान्य नहीं।

अथर्ववेद के ग्यारहवें काण्ड के द्वितीय सूक्त में भगवान् शंकर के शिव और रुद्र रूप की उत्तम स्तुति है। विस्तारभय से सारे सूक्त को उद्धृत न कर केवल इस सूक्त के आदि तथा अन्तिम मन्त्र ही उद्धृत किये जाते हैं:—

"भवशर्वौ मृडतं माभियातं भूतपतिपशुपती नमोवाम्। प्रतिहिता मायतां मा विस्राष्टं मानो हिंसिष्टं द्विपदो माचतुष्पदः ॥१॥

नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा।
भवाय च शर्वायचोभाभ्यामकरं नमः ॥१६॥

अर्थः—हे भव! हे शर्व! मुझे सुखी करो। हे भूतों के पतियों! मेरे पास रक्षा के लिये सब ओर से आओ। हे पशुओं के पतियों! आप दोनों को नमस्कार है आप दोनों धनुषों में धरे हुए विस्तृत बाण को मुझ पर मत छोड़ो। आप हमारे द्विपद मनुष्यों को और

'सृष्टि के आदिकालमें जब केवल अन्धकार ही अन्धकार था; न दिन था न रात्रि थी, न सत् (कारण) था न असत् (कार्य) था। उससमय केवल एक निर्विकार शिव ही विद्यमान थे। वह अक्षर (अविनाशी) हैं। वही सबके जनक परमेश्वर प्रार्थनीयस्वरूप हैं, उन्हीं से शास्त्रविद्या प्रवृत्त हुई है।'

श्वेताश्वतरउपनिषद् के तृतीय अध्याय में एक शिवतत्व का ही वर्णन है:—

'एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्यइमाँल्लोकानीशत-ईशनीभिः।

'यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च, विश्वाधिपोरुद्रोमहर्षिः।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वम्।'
सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।
सर्वव्यापी स भगवान् तस्मात्सर्वगतः शिवः॥

(श्वेताश्वतर ३। ११)

एक अद्वितीय रुद्र अपने शक्तिसमूह के द्वारा सब लोकों के ईश्वर हैं। सर्वज्ञ रुद्र देवताओं के स्रष्टा और पालक हैं। उन्होंने पहले ब्रह्मा की सृष्टि की थी। उनके मुख, मस्तक और ग्रीवा असंख्य हैं। वह सब प्राणियोंकी हृदय गुफा में स्थित हैं, उसी सर्वव्यापी भगवान् शिव का इसी उपनिषद् में सर्वव्यापकत्व का अन्यत्र भी वर्णन है:—

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्॥

माया प्रकृति है और महेश्वर प्रकृति माया के अधिष्ठाता हैं। माया के द्वारा उन्ही के अवयव भूत जीवों से समस्त संसार व्याप्त हो रहा है।

श्वेताश्वतरउपनिषद् में तो आदि से अन्त तक सारी शिव महिमा भरी पड़ी है:—

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं,
तं देवतानां परमञ्चदैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्तात्,
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्॥
(श्वेता० ६।७)

जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय के कारण ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र से भी उत्कृष्ट इन्द्र आदि देवताओं के भी देवता, जगत् के पति हिरण्यगर्भ आदि के भी अधिपति, परम अक्षर से भी पर, भुवनों के परमेश्वर भगवान् शंकर को हम जानते हैं। भगवान् शंकर की उत्कृष्टता का और जगह भी उल्लेख है:—

'रुद्रोवै ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च देवानाम्'
(कौषीतकि ब्राह्मण २५। १३)

सब देवों में रुद्र ज्येष्ठ, पुराण पुरुष और श्रेष्ठ हैं। इसी भाव को बतलाने वाले मंत्र यजुर्वेद में भी मिलते हैं:—

'नमोवृद्धाय च वर्षीयसे च नमः नमोऽग्रयाय च'
(अ० १६। मं० ३०)

नमोज्येष्ठाय। (मं० ३२)

'यो वै रुद्रः सभगवान्' (जैमिनीय ब्राह्मण)

जो रुद्र हैं वही भगवान् हैं।

कैवल्योपनिषद् में भगवान् शिव के विषय में लिखा है:—

तमादिमध्यान्तविहीनमेकं,
विभुं चिदानन्दमरूपमद्भुतम्।
उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं,
त्रिलोचनम् नीलकण्ठं प्रशान्तम् ॥

वह आदि मध्य और अन्त हीन है। वह रूपहीन, एक, अद्वितीय, चिदानन्द और अद्भुत है। वह उमापति, त्रिलोचन, नीलकण्ठ परमेश्वर हैं। इसमें भगवान् शिव को निराकार और साकार दोनों प्रकार से प्रतिपादन किया है।

शंकराचार्य ने अपने भाष्य में रुद्र शब्द को स्पष्ट किया है।

रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे। (जाबालोपनिषद्)

तारयतीति तारः संसारसागरात् उत्तारकम्। तारकं च तद्ब्रह्म इति तारकं ब्रह्म रुद्रः (शा० भाष्य)

भगवान् रुद्र अपार संसार सागर से तारने वाले हैं।

'रुद्रोह्येवैतत्सर्वम्' (बौधायन सूत्र)

रुद्र सर्वस्वरूप हैं।

'रुद्रोवै सर्वा देवताः' (अथर्वशिखोपनिषद्)

रुद्र सर्वदेवमय हैं।

माण्डूक्योपनिषद् में शिव को ही ब्रह्म प्रतिपादन किया है।

नान्तःप्रज्ञं, न बहिःप्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानघनंन प्रज्ञं नाप्रज्ञमदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्य मेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते, स आत्मा, स विज्ञेयः। (माण्डूक्य ७)

जिनकी प्रज्ञा वहिर्मुख नहीं है अन्तर्मुख नहीं है और उभय-मुख भी नहीं है। जो प्रज्ञान घन नही है, प्रज्ञ नहीं हैं और अप्रज्ञ भी नहीं हैं। जो वर्णन से अतीत, अदृष्ट, अव्यवहार्य, अग्राह्य, लक्षणरहित, अचिन्त्य, अकथनीय, एकात्म, प्रपञ्चरहित, शान्त, अद्वितीय, तुरीयपदस्थित निरुपाधिक शिव जानने योग्य हैं।

भगवान् शिव को देवताओं में श्रेष्ठ ही नहीं माना है अपितु ब्रह्म प्रतिपादन किया है, अतः समस्त वेद शास्त्र ब्रह्म के समर्थक होने के कारण शिव विषयक ही जानने चाहिये।

शुक्ल यजुर्वेद माध्यन्दिनी शाखा के सोलहवें अध्याय में भगवान् शिव का ही वर्णन दृष्टिगोचर होता है। विस्तार भय से मंत्र उद्धृत न कर संक्षेप से दिग्दर्शन कराया जाता है। प्रथम मंत्र में शिव का नाम रुद्र, द्वितीय और तृतीय मन्त्र में गिरिशन्त, गिरित्र, चालीसवें मंत्र में पशुपति, उग्र, भीम, ४१ वें मन्त्र में शङ्कर, शिव, शम्भु, ४७ वें मंत्र में नीललोहित, ४८ वें मंत्र में कपर्दी ४९ वें मंत्र में मृड ५४ वें मंत्र में नीलग्रीव और शितिकण्ठ का प्रयोग हुआ है। ये सब नाम संस्कृत ग्रन्थों में शिव के लिये प्रसिद्ध हैं इस अध्याय के मन्त्र और उपनिषदों में वर्णित शिव

स्वरूप के आधार पर शिवमूर्ति की कल्पना की गई प्रतीत होती है। ५१ वें मंत्र में यह प्रार्थना की गई है:—

'कृत्तिं वसानः पिनाकं बिभ्रदागहि।'

अर्थात् व्याघ्रचर्म पहनकर और पिनाक धारण करके आओ। यजुर्वेद में क्रुद्ध शिव को शान्त करने के लिये शतरुद्र का स्वतन्त्र विधान किया है। यजुर्वेद के अतिरिक्त सामवेद, अथर्ववेद और सबसे प्राचीन ऋग्वेद में भी शिव के विषय में लिखा है:—

"आवो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः।
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम्॥

(सामवेद कां० १।७।७)

'अपने पत्नीरूप अव्याकृत के मध्य में पूज्य ब्रह्मा को प्रकट करनेवाले यज्ञ के प्रतिपालक, ज्योतिःस्वरूप, व्यापक स्वामी रुद्र की वज्र के समान भयङ्कर मृत्यु के पूर्व अपनी रक्षा के लिये सब मनुष्य कर्म, उपासना और ज्ञान के द्वारा अर्चा करें।'

भगवान् रुद्र का इसी प्रकार सुन्दर व्यापकरूप तैत्तियारण्यक में भी वर्णन किया है:—

"सर्वो वै रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमो अस्तु।
पुरुषो वै रुद्रः सन्महो नमोनमः, विश्वं, भूतं,
भुवनं, चित्रं बहुधा जातं जायमानं च यत्।
सर्वोह्येष रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमो अस्तु।"

(तैत्तियारण्यक १०।१६)

जो रुद्र उमापति हैं वही सब शरीरों में जीवरूप से प्रविष्ट हैं, उनके निमित्त हमारा प्रणाम हो। प्रसिद्ध एक अद्वितीय रुद्र ही पुरुष हैं, वह ब्रह्मलोक में ब्रह्मरूप से, प्रजापति लोक में प्रजापति रूप से सूर्यमण्डल में विराटरूप से तथा देह में जीवरूप से स्थित हुआ है। उस महान् सच्चिदानन्दस्वरूप रुद्र को बारम्बार प्रणाम हो। समस्त चराचरात्मक जगत् जो विद्यमान है, हो गया है तथा होगा वह सब प्रपञ्च रुद्र की सत्ता से भिन्न नहीं हो सकता। यह सब कुछ रुद्र ही है, इस रुद्र को प्रणाम हो। यही भाव अथर्ववेद में भी प्रदर्शित किया है। देखियेः—

यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्वन्तर्य, ओषधीर्वीरुध आविवेश।
य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे, तस्मै रुद्राय नमोअस्त्वग्नये॥

(अथर्ववेद ७ । ९२ । १)

अग्नि, वायु, विद्युत्, सूर्य आदि प्रकाश वाले समूह में जो रुद्र पुरुषरूप से प्रविष्ट हुआ है, तथा जल, चन्द्रमा, नक्षत्रादिकों में व्यापक है वही प्राणियों के हृदय, कण्ठ और चक्षु में तथा—वनस्पतियो के अन्तर्गत अन्न घास आदि में स्थित है। इस नाम रूपात्मक समस्त चराचर को उत्पन्न करके पालन करने तथा अन्तकाल में इनका संहार करने में जो समर्थ है उस व्यापक अद्वितीय रुद्र के लिये नमस्कार है।

आगे फिर शंकर की स्तुति देखियेः—

मुखाय ते पशुपते यानि चक्षूंषि ते भव।
त्वचे रूपाय संदृशे प्रतिचीनाय ते नमः॥

नमस्तेऽस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥
नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा ।
भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः ॥

(अथर्व० का ११ अ० ५ सू० १५ १६)

हे पशुपते तेरे मुख को प्रणाम है और तेरे नेत्रों को भी प्रणाम है। तेरी त्वचा एवं देखने योग्य जो तेरा रूप है उसको प्रणाम है। पश्चिम दिशा के अधिपति तुझको प्रणाम है। आते हुए तुझको प्रणाम है और जाते हुए को भी प्रणाम है। हे रुद्र! खड़े हुए तुझको प्रणाम है तथा बैठे हुए को भी प्रणाम। सायङ्काल प्रणाम प्रातःकाल प्रणाम, रात्रि को प्रणाम, दिन में प्रणाम, भवरूप तथा शर्वरूप जो तू है उसे मैं प्रणाम करता हूँ।

'भवशर्वाविमं ब्रूमो रुद्रः पशुपतिश्चयः'

अथर्व० ११। ३। ६। ६।

तैत्तियारण्यकमें भगवान् शंकर की पार्वतीपति का संकेत करते हुए कैसी उत्तम स्तुति की गई है:—

अम्बिकापतये उमापतये नमः ।

(तैत्तिरीयारण्यक १०। १८)

ऋग्वेद जो भक्तहृदय के लिये अनादि है और एतिहासिकों की संकुचित दृष्टि में अत्यन्त प्राचीन सिद्ध हुआ है, उसमें शिव महिमा के कुछ नमूने देखिये:—

क्वस्य ते रुद्र मलयाकुर्हस्तो यो अस्ति भेषजोजलाषः ।

(ऋग्वेद २। ७)

हे रुद्र ! आपका वरद सुखदायी हाथ कहां है, जो सबको सुखी करने वाला है ? उससे मेरी रक्षा करो । हे पापों के विनाशक ! मुझ अपराधी के अपराध क्षमा करो !

ईशानादस्य भुवनस्य भूरेर्नवाऽयोषद्रुद्रादसूर्यम् ।

(ऋग्० २। ३३। ९)

इस भुवन के महान्स्वामी रुद्रदेव से उसकी महाशक्ति कोई छीन नहीं सकता । उसकी शक्ति उससे पृथक् नहीं हो सकती इस रुद्र की खोज भक्तजन अन्तःकरण में करते हैं । इस विषय में निम्न लिखित मंत्र देखिये:—

अन्तरिच्छन्ति तं जने रुद्रं परो मनीषया ।

(ऋग्० ९। ७३। ३)

मुमुक्षुजन उस रुद्रको अपने अन्तःकरण में बुद्धिद्वारा जानना चाहते हैं । अर्थात् इसकी खोज अन्तःकरण में जी जाती है और मुमुक्षुजन को वह अपने हृदय में प्राप्त होता है । इसमें रुद्र को ब्रह्म से अभिन्न माना है ।

भगवान् शंकर से सुगमता से मृत्यु होकर मुक्ति की कैसी अच्छी प्रार्थना कीगई है:—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् ॥

(ऋ० ७ मं ५९ सूक्त)

तीन नेत्रवाले, सुगन्ध युक्त एवं पुष्टि के वर्द्धक शङ्कर का हम पूजन करते हैं, वे शङ्कर हम को मृत्यु के दुःख से ऐसे छुड़ावें जैसे खरबूजा पक कर बेल से अपने आप टूट जाता है, किन्तु वे शङ्कर हमें मोक्ष से न छुडावें।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में भी इसी प्रकार मुक्ति के लिये प्रार्थना है:-

सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये,
विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं,
ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति॥

(श्वेता० ४। १४)

जब रुद्र ब्रह्मरूप से प्रतिपादित है तब मुक्ति के लिये प्रार्थना करना युक्ति संगत ही है। भगवान् शंकर को अथर्वशिरोपनिषद् में ब्रह्मरूप से वर्णन किया है।

य ॐकारः स प्रणवो यः प्रणवः स सर्वव्यापी,
यः सर्वव्यापी सोऽनन्तो योऽनन्तस्तत्तारं यत्तारं,
तत्सूक्ष्मं यत्सूक्ष्मं तच्छुक्लं यच्छुक्लं तद्वैद्युतं,
यद्वैद्युतं तत्परं ब्रह्म स एको रुद्रः सईशानः;
सभगवान् महेश्वरः स महादेवः।

(अथर्व शिरोप० २। ४।)

जो ॐ कार है वह प्रणव है, जो प्रणव है वह सर्वव्यापी है, जो सर्वव्यापी है वह अनन्त है, जो अनन्त है वह तारक है, जो तारक है वही सूक्ष्म ज्ञानशक्ति है, जो सूक्ष्म है वही शुद्ध है, जो

शुद्ध है वह विजली जैसा (ज्योतिःस्वरूप) परब्रह्म रुद्र है वही ईशान भगवान् महेश्वर महादेव हैं।

भगवान् शङ्कर को श्वेताश्वतरोपनिषद् में 'अणोरणीयान् महतोमहीयान्' कहकर पूर्णरूप से ब्रह्म प्रतिपादन किया है।

नारायणोपनिषद् में और जावालोपनिषद् में प्रतिपादित रुद्र-गायत्री (मृत्युञ्जय मंत्र) को स्मरण कर शिवभक्त रोगमुक्त होते हैं। रोगमुक्ति के लिये यह मंत्र अमोघ कवच है।

अकेले ऋग्वेद की ६०-७० ऋचाओं में शिव के नाम, काम, प्रभाव और स्वरूपादि का वर्णन है। अथर्ववेद में इनको सहस्र-चक्षु, तिग्मायुध, वज्रायुध और विद्युच्छक्ति आदि वतलाया है।

कैवल्य, अथर्व, तैत्तिरीय, श्वेताश्वतर, और नारायण आदि उपनिषदों में एवं आश्वलायनादि गृह्यसूत्रों में शिव, त्र्यम्बक, त्रिपुरहन्ता, त्रिलोचन, ताण्डवनर्तक, पञ्चवक्त्र, कृत्तिवासा, अष्टमूर्ति, व्याघ्रकृत्ति, वृषभध्वज, वज्रहस्त, भिषकतम, संगीतज्ञ, पशुपति, औषधविधिज्ञ, आरोग्यकारक, वंशवर्धक और नीलकण्ठ कहा है।

शिव, वामन और स्कन्द आदि पुराणों में तथा वाल्मीकीय रामायण, महाभारत, और कुमारसम्भव आदि अनेकों ग्रन्थों में शिव के लोकोत्तर गुणों को देख किसको भ्रान्त धारणा हो सकती है कि शिव वेदशास्त्रविरुद्ध देव हैं।

विद्वान् पुरुष संक्षेप से दिये हुए उद्धरणों से आशा है संतुष्ट हो जायंगे।

इतिहास में शिव

शिव पूजन की प्राचीनता सिद्ध करने के लिये हमको ग्रन्थों के रचनाकाल, मूर्तियें, शिलालेख, सिक्के और ताम्रपत्र आदि जो प्राचीन शोधोंपर विशेष रुचि रखने वालों की कृपा से प्राप्त हैं, विचार करना चाहिये ।

ऋग्वेद भक्तहृदय के लिये अनादि होते हुए भी इतिहास अनादि न मान सब से प्राचीन मानता है। उसमें शिवोपासना के लिये त्र्यम्बक, रुद्र शब्दों का उल्लेख मिलता है, अतः वैदिक काल में शिवोपासना प्रचुर मात्रा में थी यह पूर्णतया निश्चित हो जाता है। ऋग्वेद में (७। २१। ५ एवं (१०। ६६। ३ तथा निरुक्त ४। १६) में 'शिश्नदेवाः' इस पद का प्रयोग मिलता है। इससे ऐतिहासिकों ने शिवोपासना का प्राचीन रूप लिङ्गपूजा सिद्ध की है। वैदिक काल में शिवपूजन लिङ्गरूप में होती थी इसमें कुछ पश्चिमीय विद्वान् एक मत होने पर आर्यों में जो शिवलिङ्ग की पूजा देखने में आती है वह अनार्यों से ली गई है यह सिद्ध करते हैं। परन्तु पश्चिमीय विद्वानों की यह धारणा युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होती। यास्क तथा सायण ने शिश्न का अर्थ 'अब्रह्मचर्य' किया है। अतः इसका दूसरा अर्थ जो पाश्चात्यो ने किया है ठीक नहीं। अभीतक इसके लिये प्रर्याप्त प्रमाण भी नहीं मिले हैं जिनसे यह सिद्ध हो सके कि आर्य्यों ने शिवलिङ्ग की पूजा अनार्यों से ली है। अनार्यों के देव काले होने चाहिये, शिव का वर्णन शास्त्रों में श्वेत

किया है। अतः शिव अनार्यों के देव नहीं होसकते। ऐतिहासिक मीमांसा के पश्चात् यही निष्कर्ष निकलता है कि जिस रूप में आज भारतवर्षमें लिङ्गपूजा होती है उसीरूप में वैदिक समय में भी प्रचलित* थी।

रामायण में रावण के शिवलिङ्ग पूजन व महाभारत में कई स्थलों पर शिवपूजन का उल्लेख मिलने के कारण रामायण और महाभारत कालमें शिवपूजन का पूर्ण प्रचार ऐतिहासिकों ने सिद्ध किया है।

मोहनजोदडो और हरप्पा की खुदाई ने भारतीय धार्मिक इतिहास पर बहुत बड़ा प्रकाश डाला है मोहनजोदड़ो की एक मुहर में योगावस्था में बैठे ध्यानी शिव की मूर्ति मिलती है। इसमें शिव बीचमें ध्यानी के रूप में बैठे हैं और उनके चारों ओर पशु की आकृतियाँ हैं। पशुओं में बाघ, हाथी, गेंडा तथा भैंसा है जो शिव के लिये प्रयुक्त होने वाले पशुपति शब्द को स्मृतिपथ में लाते हैं।

दूसरी मुहर में शिव के तीन मुख हैं, जिनसे ब्रह्मा, विष्णु, तथा महेश का बोध होता है।

सिन्धुतटवर्तिनी सभ्यता आजसे ५ या ६ हजार वर्ष पूर्व प्रचलित थी, यह ऐतिहासिकों ने निर्विवाद सिद्ध कर दिया है। पुरातत्व की शोधों के अनुसार शिवपूजा को भी उतनी ही प्राचीन

---

*(देखिये पी. टी. श्रीनिवास आयङ्गर 'Stone age in India नामक पुस्तक पृष्ट ४९)

मानना युक्ति संगत है। पुरातत्व के अन्वेषण में इससे प्राचीन कोई स्थान नहीं मिला है जो हिन्दू सभ्यता पर प्रकाश डालता हो।

ईसा से पूर्व पहिली शताब्दी में वैक्ट्रियन तथा शक राजाओं ने उत्तर पश्चिम भारत पर राज्य किया। उनके सिक्कों पर वृषभ के चिह्न अङ्कित हैं। राजा अपलदत्तस तथा शक राजा मोस की मुद्रा पर वृषभचिह्न जो शिव के नन्दी का द्योतक है अङ्कित है। इतिहासवेत्ताओं ने बौद्धकाल से देवता को छोड़ उसके चिह्न की पूजा की जाना सिद्ध कर शिवचिह्न वृषभ के अङ्कित होने से वृषभ को शिव का प्रतीक मान शिव पूजन का उस काल में अत्यधिक प्रचार सिद्ध किया है। कुछ समय पश्चात् स्वयं शिव-मूर्ति सिक्कों पर अङ्कित होने लगी। पार्थियन राजा गोण्डाफरनिस के सिक्के पर शिव की मूर्ति अङ्कित है, जिससे यह सिद्ध है कि उन दिनों इस देश में शिवपूजा का विशेष प्रचार* था।

ईसवी सन् की पहली शताब्दी में कुषाण वंशीय राजाओं ने एक विस्तृत राज्य स्थापित किया, जिसका विस्तार काशी तक था। राजा वीम कडफाइसीस तो शैव धर्म स्वीकार कर शिवो-पासक बन गया, यह उसके सिक्कों से सिद्ध हो चुका है। सिक्कों में एक तरफ राजा का चित्र है, दूसरी तरफ नन्दी के साथ शिवजी खड़े हैं। शिवजी के हाथ में त्रिशूल तथा डमरू दिखाई पड़ता है।

---

*-देखिये लाहोर म्यूजियम के सिक्कों का सूचीपत्र प्लेट १५ नं० ४३ तथा गार्डनर प्लेट २२ नं० ८)

राजा वीम का एक भी सिक्का ऐसा नहीं है, जिस पर शिव तथा नन्दी की मूर्ति न हो। उसके उत्तराधिकारी महाराज कनिष्क ने तथा उसके वंशजों ने भी सिक्के चलाये, जिन पर शिव की मूर्ति है। महाराजा कनिष्क की बौद्ध धर्म स्वीकार करने की प्रसिद्धि है; किन्तु इसके सिक्कों पर भी शिव की मूर्ति पाई जाती है। उनमें शिवजी 'ईशो' या ईश के नाम से अङ्कित है। उसमें शिवजी के चार भुजाएँ हैं,जिनमें से एक में डमरू साफ* दिखाई पड़ता है।

कुषाण वंशज नरेशों के सिक्कों पर शिवके लिये दूसरा नाम 'मयासेनो' अर्थात् महेश भी आया है। इसी वंशमें होनेवाले वासुदेव राजाके सिक्केपर चतुर्भुजशिव तथा नन्दी की मूर्ति है। मूर्ति में शिवको तथा नन्दी की आकृति स्पष्ट रूपसे दिखाई पड़ती है। उससमय शिवकी पूजा इतनी महत्वपूर्ण समझी जाती थी कि करीब दोसौ वर्ष तक (द्वितीय तथा तृतीय शताब्दी में) कुषाण नरेशों ने निरन्तर शिव को ही अपने सिक्कों पर अङ्कित किया।

बाबू काशीप्रसाद जायसवाल ने नागवंशी राजाओं का राज्य-काल कुषाण वंशके बाद तथा गुप्त राज्य के उत्थान के पूर्व सिद्ध किया है। इस वंश के राजा मध्यभारत में राज्य करते थे। इनके शिलालेखों से ज्ञात होता है कि इस वंशके आदिपुरुषने शिव लिङ्गको कन्धे पर रख शिव को प्रसन्न कर अपने वंश की स्थापना की थी। यह बात शिलालेख के निम्न लिखित उद्धरणसे पूर्णतया सिद्ध है।

---

* देखिये लाहौर म्यूजियम की मुद्राओं की सूची प्लेट १७ नं० ६५

"अंसभारसन्निवेशितशिवलिङ्गोद्वहनशिवसुपरितुष्ट समुत्पादितराजवंशानां पराक्रमाधिगतभागीरथ्यमलजलमूर्धाभिषिक्तानाम् दशाश्वमेधावभृथस्नानानाम् भारशिवानाम्"

इसलिये इस वंश का नाम 'भारशिव' भी पड़ा। इससे ज्ञात होता है कि नागवंशी नरेशों ने शिव को अपना आराध्य देव माना था, तथा वे शिवलिङ्ग की पूजा किया करते थे। काशी में एक मूर्ति भी मिली है, जिसके मस्तक पर शिवजी की पिण्डी लिये हुए किसी पुरुष की आकृति बनी हुई है।

नागवंश के बाद उत्तरी भारत में गुप्तसाम्राज्य का प्रादुर्भाव हुआ। गुप्तवंशी नरेश वैष्णव थे, किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि उस समय शिवपूजन नहीं होता था।

पुरातत्वसम्बन्धी अन्वेषण से सिद्ध है कि गुप्तकाल (३–४ शताब्दी) में विष्णु पूजा के साथ साथ शिव पूजा भी होती थी। महाराज कुमारगुप्त का तैय्यार कराया हुआ तत्कालीन एक शिवलिङ्ग मिला है, जो लखनऊ के म्यूजियम के अन्दर रक्खा है, इस शिवलिङ्ग के नीचे के हिस्से पर एक लेख खुदा हुआ है, जिसे कमरदण्डा की प्रशस्ति कहते हैं। उस काल में विष्णु पूजा के साथ शिवपूजा का भी प्रचार बढ़ा हुआ था। उस समय बाहरी जातियों ने भारत पर आक्रमण किया और वे तत्कालीन भारतीय सभ्यता के प्रभाव से वञ्चित न रहसके। अर्थात् बाहरी जातियों ने भी शैव धर्म स्वीकार कर लिया।

हूणों ने जो भारत में आकर मध्यभारत में राज्य स्थापित कर लिया था, वे भी शिवपूजा के अनुयायी हो गये थे। इसका प्रमाण मिहिरकुल का एक सिक्का है। सिक्के में वृषभ का आकृति है तथा उसके नीचे 'जयतु वृषः' लिखा हुआ है। मुद्रा पर राजा की आकृति के सामने वृषाङ्कित ध्वजा का चिह्न है। यह चिह्न संस्कृत साहित्य के अनुसार शिव का है इससे स्पष्ट है कि हूणकाल (६-७ शताब्दी) में शैव धर्म का प्राचुर्य था।

गुप्तों के ह्रास के अनन्तर उत्तरी भारत में छटी शताब्दी में मौखरि राजाओं का राज्य था। मोखरि वंश के राजाओं के शिलालेखों में इनको 'परम माहेश्वर' लिखा है मध्यप्रान्त के असीरगढ नामक स्थान में एक सिक्का प्राप्त हुआ है, जिसपर दो सेवकों के साथ नन्दी का चित्र है।

यह सिक्का मोखरि राजाओं का सिद्ध होने के कारण स्पष्ट है कि मौखरि राजा शैव थे। उस समय बङ्गाल में राजा शशाङ्क का प्रभुत्व था। महाकवि वाण ने अपने 'हर्षचरित' में लिखा है कि शशाङ्क ने मौखरि वंश के अन्तिम राजा को मारडाला। उसके सिक्कोंपर नन्दीसहित शिव का चित्र है, जिससे यह सिद्ध होता है कि वह शिवभक्त था।

अलन (Allan) साहब ने अपनी 'गुप्त सिक्कों की सूची' की भूमिका के पृष्ठ १०१ में यह लिखा है कि वल्लभी के राजाओं ने भी उस शताब्दी में वृषभ के चित्र को अपने झण्डे पर स्थान दिया

था। इससे यही अनुमान किया जा सकता है कि वल्लभी (गुजरात) के राजा परमशैव थे। सातवीं शताब्दी से दसवीं शताब्दी तक सारे भारत में शिवपूजा की ही प्रधानता ऐतिहासिकों ने सिद्ध की है। ओहिन्द के राजा भी तत्कालीन शैवधर्म से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। यह उनके सिक्कों पर वृषभ का चित्र देखने से विदित होता है। नवीं सदी में काश्मीर में शिवपूजा का बहुत प्रचार था। यह तत्कालीन मन्दिरों से और शिलालेखों से मालूम होता है।

ऊपर लिखे अब तक मिले पुरातत्व के प्रमाणों से यह पूर्णतया सिद्ध हो जाता है कि शिव की उपासना बहुत प्राचीन है। आज से छ हजार वर्ष पूर्व मोहनजोदडो तथा हरप्पा में शिवपूजन होता था, और उसके बाद भी शिवपूजा का बराबर प्रचार रहा। कुछ का पौराणीक काल से स्वामी शङ्कराचार्य्य के अनन्तर शिवपूजा का प्रचार होना बतलाना नितान्त दुःसाहस है।

निजाम हैदराबाद में इलोरा की गुफाओं में पहाड़ी को काटकर बनाया हुआ सुन्दर शिवमंदिर संसार का अष्टम आश्चर्य कहा जाता है। पुरातत्ववेत्ताओं के अनुमान से इस मन्दिर को बने हजार ग्यारहसौ वर्ष हुए होंगे।

एलिफेण्टा के गुफा मन्दिर जो बम्बई से प्रायः छ मील दूर हैं, डेढ या दो हजार वर्ष के बने हुए सिद्ध हुए हैं। इनमें कई शिव मन्दिर हैं।

कांगडा के वैद्यनाथमन्दिर को बनेहुए पुरातत्ववेत्ताओं के

अनुमान से लगभग डेढ हजार वर्ष का समय हुआ है। इस मन्दिर को पञ्जाब प्रान्तके शिव मन्दिरों में सबसे उत्तम कहते हैं। स्मरण रहे बंगाल का वैद्यनाथ धाम इससे बिलकुल भिन्न है। इसीके पास सिद्धनाथ महादेवका मन्दिर है, जो इससे भी पुराना कहाजाता है।

उड़ीसा प्रान्तमें भुवनेश्वर का शिवमन्दिर बहुत प्राचीन है। केसरी वंशके आदिम राजा जजाति केसरी ने सन् ५८० ई० में इसे बनवाना प्रारम्भ किया था और उनके जीवन कालमें तथा उनके परवर्त्ती दो नरेशों के राज्य कालमें यह काम बराबर जारी रहा। केसरी वंशके चतुर्थ नरेश ललाटेन्दु केसरी ने सन् ६५७ ईस्वीमें इस कार्यको सम्पूर्ण किया। यह तत्कालीन प्रमाणों से ऐतिहासिकोंने सिद्ध किया है।

प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएनत्साङ्ग, महमूद गजनवी के साथ आयाहुआ आबूरिहान और इनके बाद आया हुआ इब्नबतूता का प्राचीन भारत के इतिहास में बहुत बड़ा स्थान है। इन सबोंने भी अपने अपने भ्रमण ग्रन्थों में खजुराहो की समृद्धि तथा महत्व का वर्णन किया है। यहां बहुतसे शिवमन्दिर हैं, जो भारतीय शिल्पकला तथा तत् तत्कालीन शिवपूजन का प्रचार प्रदर्शित करतेहैं।

पाश्चात्य देशोंमें भी कई प्राचीन शिवालयों के होनेका पता-लगा है, जिससे सिद्ध होताहै कि ईसाई मतके प्रचार के बहुत पूर्व उनदेशों में भी शिवपूजनकी प्रचुरता थी।

काशी के परम शैव बाबू श्री बेचूसिंह जी ने भी अपने 'शिव निर्माल्य रत्नाकर' नामक ग्रन्थ की प्रस्तावना में फ्रेञ्चदेशीय लूइस् साहब के ग्रन्थ के आधार पर विदेशों में शिवलिङ्गों के होने का उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है कि उत्तर एफ्रिका के 'इजिप्ट' प्रान्त में मेफिस और आशीरिस नामक क्षेत्रों में नन्दीपर विराजमान त्रिशूलहस्त एवं व्याघ्रचर्मधारी शिवकी अनेक मूर्त्तियां हैं। जिनका वहां के निवासी बेलपत्र से पूजन और दूध से अभिषेक करते हैं।

तुर्किस्तान के 'बाबीलन' नगर में एकहजार दो सौ फूट का एक महाशिवलिङ्ग है। यह पृथ्वीभरके अब तक प्राप्त शिवलिङ्गों में सबसे बड़ा है इसी प्रकार 'हेड्रापोलिस' नगर में एक विशाल शिवालय है, जिसमें तीन सौ फूट का शिवलिङ्ग है। अमेरिका के ब्रेजिलदेश में बहुत से अत्यन्त प्राचीन शिवलिङ्ग मिलते हैं। यूरोप के 'कारिन्थ' नगर में एक मन्दिर में पार्वती की मूर्ति प्राप्त हुई है, जिससे पूर्णतया सिद्ध है कि किसी काल में वहां भी शिवपूजन का प्राचुर्य था। इटली के कितने ही ईसाई लोग अब तक शिवलिङ्ग की पूजा करते चले आये हैं। स्कॉटलेण्ड 'ग्लासगो' में एक सुवर्णाच्छादित शिवलिङ्ग है जिसकी पूजा वहां के लोग बड़ी भक्ति से करते हैं। 'फिजियन्' के एटिस या 'निनिवा' नगर में शिवलिङ्ग है जिसे वहां के निवासी 'एपीर' कहते हैं। यहूदियों के देश में शिवलिङ्ग प्राप्त हुए हैं। अफरीदिस्तान, चित्राल, काबुल, बलखबुखारा आदि स्थानों में भी पुरातत्व के अन्वेषकों ने शिवलिङ्गों का पता

लगाया है, जिनको वहां के निवासी 'पञ्चशेर' और 'पञ्चवीर' कहते हैं।

इण्डो चाइना में अनामदेश (चम्पा) में अनेक शिवमंदिर मिलते हैं।

प्रसिद्ध फ्रेञ्च शोधकर्त्ता मि० ए० वर्गेन लिखित शिवालयों के शिलालेख विषयक ग्रन्थ तथा श्री आरसी मजूमदार लिखित 'Ancient Indian colonies in the far east' (सुदूर पूर्वके प्राचीन भारतीय उपनिवेश) नामक ग्रन्थ में यहां के संस्कृत शिलालेखों में से बानवे लेख शिवविषयक, तीन विष्णु विषयक, पांच ब्रह्मा विषयक, दो शिव और विष्णु विषयक और सात लेख बुद्ध विषयक हैं। इनकी संस्कृत शैली बड़ी सुन्दर है। शिव विषयक अनेक लेखों के आरम्भ मे 'ॐ नमः शिवाय' महामन्त्र खुदा हुआ है। तदनन्तर वहां के राजा और शिवलिङ्गों की गद्य पद्यों में प्रशंसा है। उनसे सिद्ध होता है कि वहां के प्राचीन राजा पूर्ण शैव थे।

मीसोन ग्राम के चौथे शिलालेख में भद्रवर्मा नाम के राजाका भद्रेश्वर शिवलिङ्ग स्थापना का और भोग के लिये 'सुलह' और 'कुचक' नामक स्थलों के चढाने का उल्लेख है। यह लेख ई. सं. की पांचवी शताब्दी का है। कालान्तर में भद्रेश्वर का मन्दिर नष्ट हो जाने पर शम्भुभद्रवर्मा नामक राजा ने 'शम्भुभद्रेश्वर' महादेव की स्थापना की। यह वहां के लगे हुए शिलालेखों से पूर्ण

प्रमाणित है। शिलालेख के शिवविषयक पद्य बहुत ही सुन्दर हैं। पाठकों के मनोरञ्जनार्थ कतिपय पद्य उद्धृत किये जाते हैं:—

सृष्टं येन त्रितयमखिलं भूर्भुवः स्वः स्वशक्त्या,
येनोत्खातं भुवनदुरितं वह्निनेवान्धकारम् ।
यस्याचिन्त्यो जगति महिमा यस्य नादिर्नचान्त-
श्चम्पादेशे जनयतु सुखं शम्भुभद्रेश्वरोयम् ॥

कितना भाव पूर्ण श्लोक है। भक्त ने शिव को परब्रह्म मान तीनों लोकों के स्रष्टा, अनादि, अनन्त और अवर्णनीय महिमावाले वर्णन किया है। इसी श्लोक के आधार पर उस प्रदेश का प्राचीन नाम चम्पा सिद्ध हुआ है।

यं सर्वदेवाः ससुरेशमुख्याः,
ध्यायन्ति तत्त्वविदश्च सन्तः ।
स्वस्थः सुशुद्धः परमो वरेण्यो,
ईशाननाथः स जयत्यजस्रम् ॥

इसी प्रकार बहुत से पद्यों से शिवकी पूर्ण भक्ति और तत्कालीन राजाओं का पूर्ण शैव होना प्रमाणित होता है।

इन लेखों से विदित होता है कि 'चम्पा' देश के राजा उत्तरोत्तर परम शिवभक्त होते रहे हैं। ई. सं. के ६८७ के लेख से पता चलता है कि वहां के राजा प्रकाशधर्म ने कोप (बैंक) स्थापित करके 'भद्रेश्वर' महादेव के भोग राग का प्रबन्ध किया:—

'श्री ज्ञानेश्वरकोपं संस्थाप्य यथाविधि स्वभक्तिवशात् ।
श्रीमान् प्रकाशधर्मो मुकुटं भद्रेश्वरायादात् ॥'

तदनन्तर आगे २१ वें लेखमें यह लिखा है कि परमभक्त नरवाहन वर्म्माने शिवलिङ्ग की वेदी को सोने से बनवाया था। यह लेख ई. सं. ७३० का है। लेख इस प्रकार है:—

नरवाहनवर्मश्रीरकरोत्तां शिलामयीम् ।
रुक्मरौप्यवहिर्वद्धां ब्रह्मा मेरुशिखामिव ॥
स्वर्णरौप्यमयी लक्ष्मीं बिभ्रती वेदिका पुनः ।
विद्युत् × × × × भाति शिखा हिमगिरेरिव ॥

ई. सं ८३५ के ३१ वें लेख में शम्भु भद्रेश्वर लिङ्ग का इतिहास व ई. सं. १०८८ के लेख में जयेन्द्रवमा राजा का भद्रेश्वर महादेव के अमूल्य रत्नजटित एक स्वर्णकवच समर्पित करने का वर्णन है। कुछ प्रामाणिक कागज पत्रों से यह भी पता लगा है कि यह कवच तोल में १७२० तोले था।

'म्यास्परो' नामक फ्रेञ्च विद्वान् ने अपनी पुस्तकमें लिखा है कि 'भद्रेश्वर' महादेव के मन्दिर का शिखर बनवाने में तीन हजार तोले सोना और मन्दिर की दीवारों के बनवाने में चौदह लाख तोले चान्दी लगी थी। इसी प्रकार उस देश के राजाओं ने मन्दिर और महादेव के लिये अपनी अपरिमित धनराशि खर्च कर गायक सेवक, नर्तक कोष्टागार आदिका प्रबन्ध किया था। यह निम्न लिखित लेख से स्पष्ट है:—

'अथ तस्य तदापि राज्ञेन्द्रवर्मणा पुनः स्थापितमेव सकल कोपकोष्ठागाररजतसुवर्णमुकुटरत्नहारादिपरिभोगसान्तःपुरविलासिनीदासदासीगोमहिपक्षेत्रादिद्रव्यं तस्मै तेन दत्तं चित्त-प्रसादेन'—'तस्मै भगवते सकललोकहितकारणाय श्रीन्द्र-भद्रेश्वरायेदमिति स भगवान् श्रीमानिन्द्रवर्मा 'जत्र्' कोष्ठा-गारं शिवयज्ञक्षेत्रद्वयं शिखिशिखागिरिप्रदेशं भक्त्या शुद्धेन मनसैव दत्तवानिति ।'

इन्द्रभद्रेश्वरश्चैव सर्वद्रव्यं महीतले ।
ये रक्षन्ति रमन्त्येते स्वर्गे सुरगणैः सदा ॥
ये हरन्ति पतन्त्येते नरके वा कुलैः सह ।
यावत्सूर्योऽस्ति चन्द्रश्च तावन्नरकदुःखिताः ॥
लुब्धेन मनसा द्रव्यं यो हरेत्परमेश्वरात् ।
नरकान्न पुनर्गच्छेत् न चिरं सतु जीवति ॥

यहां 'जत्र्' का अर्थ है धान्यगृह। इसमें पापी चोरों के लिये दण्ड विधान तो है ही, साथ ही भक्ति मार्ग के पथिकों के लिये अमूल्य उपदेश भी है। कैसी उच्चकोटिकी भक्ति हैं। धन्य है वे जो भगवान् को अपना सर्वस्व समपण कर देते हैं।

चम्पादेश (अनाम) के शिवलिङ्गों के अन्दर इस 'भद्रेश्वर' का एक प्रधान स्थान होने पर भी वहां इससे भी अधिक प्राचीन शिव लिङ्ग विद्यमान हैं। एक 'मुखलिङ्ग' महादेव अति प्राचीन हैं जिनका

विवरण २६ वें शिलालेख में मिलता है। इस लिङ्ग की स्थापना विचित्र सगर नामक महाराजा ने द्वापरयुग के ५६११ वर्ष वीतने के वाद अर्थात् आज से आठ लाख तिरसठ हजार एकसौ तेतीस वर्ष पूर्व की थी; और इन महादेव की सेवामें उसने अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया था। तदनन्तर समय पाकर अन्यदेश के असभ्य पुरुषों ने इस पवित्र मूर्ति को नष्ट भ्रष्ट करके इसकी सारी सम्पत्ति हरण करली। पीछे उस शून्य देवालय में सत्यवर्मा ने 'सत्यमुख लिङ्ग' को स्थापित किया। इन सब बातों से चम्पादेश की उज्वल शिवभक्ति और शिवपूजन की इतनी प्राचीनता अब तक मिले लेखों से पूर्ण सिद्ध है।

शिव पूजन का वेद, उपनिषद और पुराणों में वर्णन होने से भक्तहृदय के लिये तो प्राचीनता में सन्देह का किसी प्रकार अवकाश ही नहीं रहता। अब ऐतिहासिकों को भी इस शिलालेख से शिवपूजन की इतनी प्राचीनता में सन्देह नहीं रह सकता। यह तो पूर्णतया सिद्ध है कि शिलालेख में द्वापर युग के वर्षों का अङ्कित करना विना किसी आधार के हो नहीं सकता। यह निश्चित है कि उत्तरोत्तर प्राचीन मंदिर, मूर्ति शिलालेख अथवा ताम्रपत्रों के आधार पर ही यह लिखा जा सकता है, अन्यथा किसी भी दशा में यह सम्भव नहीं। अत्यन्त प्राचीन काल के शिलालेख आदि की कहीं के भी जलवायु में अक्षुण्ण रहना सम्भव न होने के कारण उपलब्धि नहीं हो सकती।

वह लेख इस प्रकार है:—

पञ्चसहस्रनवशतैकादशे विगतकलिकलङ्कद्वापरवर्षे श्री विचित्रसगरसंस्थापितः श्रीमुखलिङ्गः । तस्यसकलकोष्ठागाररजतरत्नहेमकदवकलशभृङ्गाररुक्मदण्ड सितातपत्र चामरहेमघटादिपरिभोगा वर्धमाना भवन्तिस्म । ततश्चिर-कालकलियुगदोषाद्देशान्तरप्लवागतपापनरभुग्गणसंहृतेषु प्रति-मापरिभोगभूषाणेषु शून्योऽभवत् । पुनरद्यापि तत्पुण्यकीर्त्ये-विनाशाय श्रीसत्यवर्मनरपतिर्विचित्रसगरमूर्तिरिव माधवस सशुक्लपक्षे यथापुरा श्रीभगवतीश्वरमुखलिङ्गमतिष्ठिपत् ।'

चम्पादेश के इतिहास से यह भली भाँति मालूम हो जाता है कि इस देश में प्राचीन काल में शिव पूजन का बाहुल्य था। वहां की कई मूर्तियों से यह भी प्रतीत होता है कि वहां के लोग शिवजी की पूजा लिङ्गाकार और मनुष्याकार में करते थे। कुछ राजा लोग अपने मुख की आकृति के शिवलिङ्ग जो मुखलिङ्ग कहे जाते हैं स्थापित करते थे। यह बात शिलालेखों से मालूम होती है। 'ट्राक्य' ग्राम में शिवजी की एक मनुष्याकार मूर्ति मिली है। 'मीसोन' ग्राम में भी इसी प्रकार एक मूर्ति के हाथों में रुद्राक्ष माला तथा अमृत पात्र है। सिर पर सुन्दर जटा और ललाट में अग्नि नेत्र दृष्टिगोचर हो रहा है। 'यानसुख' ग्राम में एक मूर्ति त्रिनेत्र और हाथ में त्रिशूल लिये हुए शिव की है। 'ड्रानलाय' ग्राम में नन्दीवाहनमूर्ति है। २६ वें लेख से 'पोनगर' में गणपति की मूर्तियों पर शिवलिङ्गों की ई० सं० ८१७ में बनाये जाने की बात मालूम होती है।

फ्रेंचों के अधीन 'कम्बोडिया' में 'सियाराम' जिले के 'वात-चोम' स्थान के खम्भों के ऊपर खुदे हुए लेख से मालूम होता है कि वहां के राजा राजेन्द्रवर्मा ने शा. सं० ८६६ में तालाव के वीच शिवलिङ्ग को स्थापित किया था।

इतिहास प्रसिद्ध 'जावा' और 'सुमात्रा' द्वीपों में जिनका प्राचीन नाम 'यव' और 'सुवर्णद्वीप' था अनेक शिवलिङ्ग हैं। जो लगभग बारह सौ वर्षों के प्राचीन हैं।

होलेण्ड के लैडन युनिवर्सिटी के प्रो० डा० एन. जे. क्रोम नामक महाशय ने इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला है। इसी प्रकार मिली हुई मूर्तियों से सारा विश्व प्राचीन काल में शिव भक्ति में ओतप्रोत था, यह पूरी तरह निश्चित है। पुरातत्व के अनुसन्धान से शिव के अतिरिक्त किसी अन्य देवता की इतनी प्राचीन मूर्तियों के मिलने का उल्लेख नहीं हुआ है।

भारत में जो हिन्दू सभ्यता का प्राण हैं, हजारों प्राचीन मन्दिर शिलालेख, मूर्तियें और मन्दिरों के पूजन आदि के लिये दिये हुए ताम्रपत्र प्राप्त होते हैं, जिनका पूरा विवरण देने से एक वड़ा ग्रंथ तैयार हो सकता है।

अव हम मथुरा के संग्रहालय में रक्खे हुए साढ़े पन्द्रह सौ वर्ष पुराने शैव स्तम्भ का वर्णन करते हैं, जिसका डाक्टर देव दत्त भाण्डारकर ने जनवरी १९३१ 'एपिग्राफिया इण्डिया' में सम्पादन किया है। यह लेख ई० सन् ३८० का है लेख इस प्रकार है:—

पंक्ति १ सिद्धम् । भट्टारकमहाराजराजाधिराजश्रीसमुद्रगुप्तस
,, २ त्पुत्रस्य भट्टारक महाराज राजाधिराज श्रीचंद्रगुप्त
,, ३ स्य विज (य) राज्यसंवत्सरे ००० [गुप्त] कालानु-
वर्तमान सं
,, ४ वत्सरे एकषष्ठे ६१ [आषाढ़मासे] प्रथमे शुक्रदिव
से पं
,, ५ चम्यां । अस्यां पूर्वायां भगवत्कुशिकाद्दशमेन भगव
,, ६ त्पराशराच्चतुर्थेन [भगवत्कपि] पि (ल) विमल शि
,, ७ ष्यशिष्येण भगवदु [पमित] विमलशिष्येण
,, ८ आर्योदिताचार्येण स्वपुण्याप्यायननिमित्तं
,, ९ गुरूणां च कीर्त्य [मुपमितेश्व] र कपिलेश्वरौ
,, १० गुर्वायतने गुरु००० प्रतिष्ठापितौ नै
,, ११ तत्ख्यात्यर्थमभिलिख्यते [अथ] माहेश्वराणां वि-
,, १२ ज्ञप्तिः क्रियते सम्बोधनं च यथाकालीनाचार्या-
,, १३ णां परिग्रहमिति मत्वा विशङ्कं पूजा पुर-
,, १४ स्कारपरिग्रहपरिपाल्यं कुर्यादिति विज्ञप्तिरिति ।
,, १५ यश्च कीर्त्याभिद्रोहं कुर्याद्यश्चाभिलिखितमुपर्यधो
,, १६ वा स पञ्चभिर्महापातकैरुपपातकैश्चसंयुक्तस्स्यात्
,, १७ जयति च भगवाण [भैरवः] रुद्रदण्डोग्रनायको
नित्यम् ।

अर्थ—सिद्धि हो । भट्टारक महाराज राजाधिराज श्रीसमुद्रगुप्त

के सत्पुत्र भट्टारक महाराज राजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्त के विजयी राज्य संवत्सरमें.....गुप्तकालानुवर्तमान ६१ वें वर्ष के प्रथम आषाढ मास की शुक्ल पञ्चमी के दिन। इस तिथि में गुरुओं की कीर्ति के लिये और अपने पुण्य की वृद्धि के लिये आर्योदिताचार्य ने गुरु मंदिर में उपमितेश्वर और कपिलेश्वर नामक (गुरु प्रतिमा युक्त दो) शिवलिङ्गों की स्थापना को। आर्य उदिताचार्य भगवान् कुशिक से दशम हैं, भगवान् पराशर से चौथे हैं, भगवान् कपिल के शिष्य के शिष्य हैं, और भगवान् उपमित के शिष्य हैं। कुछ अपनी ख्यति के लिये यह विज्ञप्ति हमने नहीं लिखाई, बल्कि इसके द्वारा सब माहेश्वरों को सूचित किया जाता है तथा इस समय के आचार्यों की सेवा में निवेदन किया जाता है कि इस परिग्रह को अपना मान कर निःशङ्क भाव से इसकी पूजा, सम्मान और रक्षा करें, यह प्रार्थना है। जो इस कीर्ति के कामको नष्ट भ्रष्ट करेगा या लेख में कोई अक्षर घटावेगा बढावेगा वह पञ्चमहापातक और पञ्च उपपातकों के पाप का भागी होगा।

रुद्रदण्ड वाले उग्रनेता भगवान् भैरव की जय हो।

इस स्तम्भ पर लकुलीश की मूर्ति है, जिसके हाथ में दण्ड दृष्टिगोचर होता है और पास में एक त्रिशूल अङ्कित है।

लकुलीश पाशुपत सम्प्रदाय के संस्थापक थे। कुछ ऐतिहासिकों ने इस नाम को 'नकुलीश' भी माना है। लकुलीश का जन्म कायावतार अथवा कायावरोहण क्षेत्र में हुआ। बडौदा रियासत के

बरौदा प्रान्त में डभोई तालुक का कारवन्त स्थान ही प्राचीन कायावरोहण सिद्ध हुआ है। यहीं पर लकुलीश ने उग्रतप कर एक प्राचीन पाशुपत सम्प्रदायको पुनरुज्जीवित किया।

लिङ्ग पुराण में भी शिवजी ने अपने लिये कायावतार नामक सिद्ध क्षेत्र में लकुली नाम से ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी के रूपमें भविष्य में अवतार लेने का वर्णन किया है।

लकुलीश के चार शिष्य हुए। इनमें सबसे बड़े कुशिक थे, इन्हीं भगवान् कुशिक का मथुरा स्तम्भ के लेख में वर्णन है। इस प्रकार शिवलिङ्गोंकी प्रस्थापना करनेवाले आर्य उदिताचार्य लकुलीश की परम्परा में ग्यारहवें थे। यदि एकपीढी के लिये २५ वर्ष का समय मानलिया जायतो लकुलीश उदिताचार्य से २७५ वर्ष पहिले हुए। अर्थात् लकुलीश का काल १०५ ईस्वी से १३० ईस्वी तक निश्चित होता है।

लकुलीश की मूर्तियाँ भी बहुत मिली हैं। उनके दाहिने हाथमें लकुट होता है, जिसके कारण ही सम्भवतः लकुटी (ली) श नाम पड़ा होगा। बायें हाथ में बीजपूरक फल होता है। मस्तक में तृतीय नेत्र पाया जाताहै, जिससे इनका त्र्यम्बक रूप सिद्ध होताहै। कैलासपुरी में भी नाथों के मन्दिर में लकुलीश की मूर्ति विक्रम संवत् १०२८ तदनुसार ईस्वी सन् ९७१ की है।

चीनीयात्री हुएनत्साङ्ग ने भी पाशुपत सम्प्रदाय का उल्लेख किया है।

मथुरा के शिलालेख से गुप्तकाल में शिवभक्ति की प्रचुरता प्रमाणित होती है। इससे प्राचीन पाशुपत (शैव) सम्प्रदाय के

"शिव एव हरिः साक्षाद्धरिरेव शिवः स्मृतः ।"
(बृ० ना० पु० १४ ।२)

महाभारत अनुशासन पर्व में श्रीवेदव्यासजी ने भगवान् श्रीकृष्ण से शिवजी की महिमा और पाण्डवों को शिवसहस्रनाम के पाठ का उपदेश कराया है। इसी प्रकार आगे शिवजी ने भगवान् विष्णु की श्रेष्ठता प्रतिपादन करते हुए पार्वतीजी से विष्णु-सहस्रनाम के पाठ का अनुरोध किया है।

महाभारत में अभेद होने के कारण ही शिवमन्दिर में विष्णु-सहस्रनाम के पाठ से और विष्णुमन्दिर में शिवसहस्रनाम के पाठ से मुक्ति का उल्लेख मिलता है।

"शिवालये पठेन्नित्यं तुलसीवनसंस्थितः ।
नरो मुक्तिमवाप्नोति चक्रपाणेर्वचोयथा ॥"

इसके अतिरिक्त विष्णुसहस्रनाम की भगवन्नामावलि में भी शर्वः, शिवः, स्थाणु, माधवः, आदि शिव वाचक नाम भगवान् विष्णु के लिये प्रयुक्त हुए हैं, इनसे पूर्णतया अभिन्नता सिद्ध होती है।

शास्त्रों में शिव और विष्णु में अभेद रखने वाले को ही भगवत्प्राप्ति का विधान है।—

"सन्निन्दासति नामवैभवकथा श्रीशेशयोर्भेदधी,
रश्रद्धाश्रुतिशास्त्रदैशिकगिरां नाम्न्यर्थवादभ्रमः ।
नामास्तीति निषिद्धवृत्तिविहितस्त्यागोहि धर्मान्तरैः,
साम्यं नाम्निजपे शिवस्य च हरेर्नामापराधाःदश ॥

शिव और विष्णु में अभेद

भूतिभूषितदेहाय, द्विजराजेन राजते।
एकात्मने नमस्तुभ्यं, हरये च हराय च ॥

(मधुसूदन सरस्वती)

शिव और विष्णु के वास्तविक रहस्य को नहीं जानने वाले शैव विष्णु के और वैष्णव शिव के निन्दक दृष्टिगोचर होते हैं। यहाँ तक कि कुछ बड़े बड़े वैष्णव मन्दिरों में रुद्राक्षमाला और शिवतिलक वालों का मंदिरप्रवेश शिवमन्दिरों में तुलसीमाला और ऊर्ध्वपुण्ड्रवालों का प्रवेश निषिद्ध माना जाता है। यदि हम अपने शास्त्रों पर दृष्टिपात करें तो यह सब भ्रान्तधारणा हर साम्प्रदायिकों की शास्त्रीय तत्व को बिना देखे चलाई हुई प्रतीत होती है। शास्त्रों में शिव और विष्णु का अभेद एवं वैष्णवग्रंथों में शिवप्रशंसा और शैवग्रंथों में विष्णु की प्रशंसा देखने से परस्पर निन्दा करने वालों को थोड़ा सा भी विरुद्ध बोलने का अवकाश नहीं रहता। पाठकों के मनोरञ्जनार्थ कतिपय प्रमाण उद्धृत कर इस व्यर्थ विचार को निर्मूल सिद्ध करने का प्रयास किया जाता है। आशा है पाठक पक्षपात रहित हो निम्नलिखित उद्धरणों पर विचार करेंगे तो शिव विष्णु का भेद एवं एक दूसरे को हीन मानना अनुचित सिद्ध हो जायगा।

बृहद्नारद पुराण में क्या ही उत्तम विष्णु का और शिव का अभेद प्रतिपादन किया है:—

"शिव एव हरिः साक्षाद्धरिरेव शिवः स्मृतः ।"

(वृ० ना० पु० १४ ।२)

महाभारत अनुशासन पर्व में श्रीवेदव्यासजी ने भगवान् श्रीकृष्ण से शिवजी की महिमा और पाण्डवों को शिवसहस्रनाम के पाठ का उपदेश कराया है। इसी प्रकार आगे शिवजी ने भगवान् विष्णु की श्रेष्ठता प्रतिपादन करते हुए पार्वतीजी से विष्णु-सहस्रनाम के पाठ का अनुरोध किया है।

महाभारत में अभेद होने के कारण ही शिवमन्दिर में विष्णु-सहस्रनाम के पाठ से और विष्णुमन्दिर में शिवसहस्रनाम के पाठ से मुक्ति का उल्लेख मिलता है।

"शिवालये पठेन्नित्यं तुलसीवनसंस्थितः ।
नरो मुक्तिमवाप्नोति चक्रपाणेर्वचोयथा ॥"

इसके अतिरिक्त विष्णुसहस्रनाम की भगवन्नामावलि में भी शर्वः, शिवः, स्थाणु, माधवः, आदि शिव वाचक नाम भगवान् विष्णु के लिये प्रयुक्त हुए हैं, इनसे पूर्णतया अभिन्नता सिद्ध होती है।

शास्त्रों में शिव और विष्णु में अभेद रखने वाले को ही भगवत्प्राप्ति का विधान है।—

"सन्निन्दासति नामवैभवकथा श्रीशेशयोर्भेदधी,
रश्रद्धाश्रुतिशास्त्रदैशिकगिरां नाम्न्यर्थवादभ्रमः ।
नामास्तीति निषिद्धवृत्तिविहितस्त्यागोहि धर्मान्तरैः,
साम्यं नाम्निजपे शिवस्य च हरेर्नामापराधाःदश ॥

अर्थात् (१)सन्तों की निन्दा, (२) असत् (पापी) पुरुष के सामने नामके वैभव की कथा कहना, (३) शिव और विष्णुमें भेद बुद्धि रखना, (४) वेद वचनों में अश्रद्धा, (५) शास्त्र वचनो में अश्रद्धा, (६) सद्गुरु के वचनों में अश्रद्धा (७) ईश्वर के नाम की महिमा को अर्थवाद समझाने का भ्रम, (८) सब पापों को मिटाने वाला ईश्वर का नाम मेरे पास है इससे पाप नष्ट हो ही जाँयगे, ऐसा समझ कर पाप करते रहना, (९) ईश्वर के नाम से अधिक पुण्य होने के कारण सन्ध्यावन्दन, गायत्री जप, दान यज्ञ तप आदि वेदशास्त्रोक्त शुभकर्मों का त्याग और (१०) ईश्वर के नामों को अन्य अन्य धर्मों के बराबर समझना ये ऊपर कहे हुए भगवान् शिव एवं विष्णु के नाम जप सम्बन्धी दश अपराध हैं, अतएव उन्हें छोड़कर ईश्वर का नाम जपना चाहिये। वस्तुतः शिव और विष्णु एक हैं उनमें भेद मानना उचित नहीं। जो शिव हैं वही विष्णु हैं और जो विष्णु हैं वही शिव हैं। शिव के हृदय विष्णु हैं और विष्णु के हृदय शिव हैं जैसे उपनिषदों में मिलता है:—

"शिवाय विष्णुरूपाय शिवरूपाय विष्णवे।
शिवस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोश्चहृदयं शिवः॥
यथा शिवमयो विष्णुरेवं विष्णुमयः शिवः।
यथान्तरं न पश्यामि तथा मे स्वस्तिरायुषि॥

वास्तव में देखा जाय तो शिव और विष्णु में भेद ही क्या है? कहा है:—

"रुद्रो नारायणश्चैवेत्येकं सत्वं द्विधाकृतम् ।
लोकेचरति कौन्तेय ! व्यक्तिस्थं सर्वकर्मसु ॥ (महाभारत)

अर्थात् हे कौन्तेय ! उस परमेश्वर ने अपनी माया के एक ही शुद्ध सत्वगुण को रुद्र और नारायण इन दो रूपों से बतलाया है। एक ही ब्रह्म के रुचिवैचित्र्य के उपासनाभेद से शिव विष्णु आदि अनेक रूप हैं। शैव और वैष्णवों के एक दूसरे के आराध्य देव को हीन कहना, अपने ही आराध्यदेव को रुष्ट करना है। भक्तों को एक दूसरे को हीन कहने का बिलकुल अवकाश ही नहीं, जब कि स्वयं शिव महावैष्णव हैं और विष्णु परम शैव हैं। शिवजी विष्णु की उपासना करने के कारण वैष्णव एवं विष्णु शिवोपासक होने के कारण शैव कहलाते हैं। श्रीमद्भागवत के द्वादशस्कन्ध में शिव का परम वैष्णव होना प्रतिपादित है:—

"वैष्णवानां यथा शम्भुः"

अर्थात् जैसे वैष्णवों में शम्भु हैं।

जिस प्रकार शिवजी परम वैष्णव हैं, उसी प्रकार श्रीविष्णु भी परम शैव हैं। ये तन मन से शिवजी की उपासना करते हैं। इन्हें शिवजी के समान कोई प्रिय नहीं हैं। श्री पुष्पदन्तराज गन्धर्व ने अपने महिम्न स्तोत्र में लिखा है:—

"हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधायपदयो-
र्यदेकोने तस्मिन्निजमुदहरन्नेत्रकमलम् ।

गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुपा,
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर ! जागर्ति जगताम् ॥"

अर्थात् 'भगवान् विष्णु प्रतिदिन सहस्र पुष्पों से श्रीशिवजी की पूजा करते थे। एक दिन उनमें एक कमल कम हो गया। तब कमलनयन श्रीविष्णु भगवान् ने अपना नियम पूरा करने के लिये अपना एक नेत्र कमल निकाला इससे भगवान् शिव अत्यन्त प्रसन्न हुए और विष्णु को चक्र प्रदान किया जो आज भी त्रिलोकी की रक्षा करता है।

पद्मपुराण में भी इसी प्रकार विष्णु को शैव प्रतिपादन किया है।

"न त्वया सदृशोमह्यं प्रियोऽस्ति भगवन्हरे"

इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि विष्णु शिव के अनन्य भक्त हैं।

श्रीरामतापनीयोपनिषद् में अत्रि और याज्ञवल्क्य के संवाद में लिखा है कि श्री रामचन्द्रजी की तपस्या से ही शिवजी को काशी में सब जीवों को मुक्ति प्रदान करने का अधिकार मिला है। यथाः-

"क्षेत्रेऽत्र तव देवेश ! यत्र कुत्रापि वामृताः ।
कृमिकीटादयोऽप्याशु मुक्ताः सन्तु न चान्यथा ॥
मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम् ।
उपदेक्ष्यसि मन्मन्त्रं समुक्तो भविता शिव ॥

अर्थात् हे शिवजी ! आपके इस क्षेत्र में जहां कहीं भी जो कोई कृमि कीटादि पर्यन्त जीव मरेगा वह शीघ्र ही मुक्त होजायगा

इसमें कोई सन्देह नहीं। मरते समय जिस किसी के दाहिने कान में आप स्वयं उपदेश करेंगे वह शीघ्र ही मुक्त होजायगा। इसी प्रकार राम का भी पूर्ण शिवभक्त होने के कारण लङ्काविजय के पूर्व रामेश्वर शिव स्थापना का उल्लेख है शिव की भक्ति के विना राम की भक्ति प्राप्त नहीं होसकती। इस विषय में तुलसीदासजी ने शिवमहिमा प्रतिपादन करते हुए राम के मुखसे कहलाया है किः—

औरो एक गुप्त मत, सबहिं कहौं करजोरि।
शंकर भजन विना नर, भगति न पावहिं मोरि॥

विष्णु के हृदय में शिव के प्रति महान् आदर है। यहां तक कि स्वयं दक्ष के यज्ञ में शिव के विना सम्मिलित नहीं हुए और इसी प्रसंग में श्रीमद्भागवत में श्री भगवान् ने कहा है किः—

अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम्।
आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयंदृगविशेषणः॥
(४—७—५०)

आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज।
सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्रे संज्ञां क्रियोचिताम्॥
(४—७—५१)

त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम्।
सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् सशान्तिमधिगच्छति॥
(४—७—५४)

मैं (विष्णु) ब्रह्मा और शिव जगत् के कारण हैं, परे हैं, आत्मा

करते हैं कि अमुक बड़ा है और अमुक छोटा है वे अगले जन्म में राक्षस अथवा पिशाच होते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

स्वयं भगवान् शिव भगवान् विष्णु से कहते हैं:—

मद्दर्शने फलं यद्वै तदेव तवदर्शने।
ममैव हृदये विष्णुः विष्णोश्चहृदयेह्यहम्।
उभयोरन्तरं यो वै न जानाति मतोमम।

(शिव० ज्ञान० ४।६१-६२)

मेरे दर्शन का जो फल है वही आपके दर्शन का है। आप मेरे हृदय में निवास करते हैं और मैं आपके हृदय में। जो हम दोनों में भेद नहीं समझता वही मुझे मान्य है। अभेद होने ही के कारण इसी प्रकार भगवान् श्रीराम भगवान् शिव से कहते हैं:—

ममास्ति हृदये शर्वो भवतो हृदयेत्वहम्।
आवयोरन्तरं नास्ति मूढाः पश्यन्ति दुर्धियः॥
ये भेदं विदधत्यद्धा आवयोरेकरूपयोः।
कुंभीपाकेषु पच्यन्ते नराः कल्पसहस्रकम्॥

(पद्म० पाता० २८।२१।२३)

आप (शंकर) मेरे हृदये में रहते हैं, और मैं आपके हृदय में रहता हूँ, हम दोनों में कोई भेद नहीं है। मूर्ख एवं दुर्बुद्धि मनुष्य ही हमारे अन्दर भेद समझते हैं। हम दोनों एक रूप हैं। जो मनुष्य हमारे अन्दर भेद करते हैं वे हजार कल्पपर्यंत कुम्भीपाक नरकों में यातना सहते हैं।

इसी भाव को लेकर श्री रामचरितमानस में महाकवि तुलसीदासजी ने भगवान् राम से कहलाया है।

शङ्करप्रिय ममद्रोही, शिवद्रोही मम दास।
ते नर करहिं कल्पभरि, घोर नरक महं वास॥

वृहद्धर्मपुराण में भी, भगवान् ने लक्ष्मी से कहा है।

शिवादन्यः प्रियो मेऽस्ति भक्तोयः शिवपूजकः।
शिवस्यापूजको लक्ष्मि न कदापि प्रियो मम॥

शिव के अतिरिक्त शिव की अर्चा करने वाला शिवभक्त मुझे अत्यन्त प्रिय है। इसके विपरीत जो शिव की पूजा नहीं करते वे मुझे कदापि प्रिय नहीं हो सकते।

इसी भाव की तुलसीदास जी की उक्ति है किः—

शिवसमान प्रिय मोहिं न दूजा।

जिस प्रकार आशुतोष शिव भगवान् के प्रिय हैं उसी प्रकार कृष्ण भी शिव के परम भक्त एवं प्रिय हैं। कूर्म पुराण में लिखा हैः-

"नार्जुनेन समः शम्भोर्भक्तो भूतो भविष्यति।
मुक्त्वा सत्यवतीसूनुं कृष्णं वा देवकीसुतम्" ॥

वेदव्यास और कृष्ण के अतिरिक्त अर्जुन के समान महादेव का भक्त न तो कोई हुआ और न कोई होगा। महाभारत में स्वयं शिव कृष्ण के लिये कहते हैं कि मुझे कृष्ण के सिवाय कोई प्रिय नहीं है।

अहं यथावदाराध्यः कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ।
तस्मादिष्टतमः कृष्णादन्यो मम न विद्यते ॥

(महाभारत सौप्तिक पर्व)

उपर्युक्त प्रमाणों से यह सिद्ध हो गया है कि भगवान विष्णु एवं शिव परस्पर अत्यन्त आदर का भाव रखते हैं और दोनों एक दूसरे के परम भक्त हैं। ऐसे प्रमाणों के होते हुए भी जो भगवान् विष्णु के भी परम आदरणीय जगद्गुरु शिवजी की निन्दा करते हैं, वे कभी सच्चे वैष्णव नहीं हो सकते। इसी प्रकार जो महादेव के परम आदरणीय विष्णु की निन्दा करते हैं वे कभी सच्चे शैव हो नहीं सकते।

वास्तवमें देखा जाय तो शिव विष्णु अभिन्न हैं। वायु पुराण में शिवसे भगवान् विष्णु की अभिन्नता।प्रतिपादित कर व्यापकत्व का वर्णन है:—

त्वं च मे हृदयं विष्णो तव चाहं हृदि स्थितः ।
प्रकाशंचाप्रकाशंच जङ्गमं स्थावरं च यत् ॥
विश्वरूपमिदं सर्वं रुद्रनारायणात्मकम् ॥

हे विष्णो ! आप मेरे हृदय हैं और आपके हृदय में मैं (शिव) स्थित हूँ। प्रकाशित, अप्रकाशित, स्थावर, और जङ्गम सम्पूर्ण विश्व शिव और विष्णुरूप है।

इसी प्रकार वचन शिवप्रतिपादक पुराणों में भी मिलते हैं। विष्णु से शिव कहते हैं:—

त्रिधाभिन्नो ह्यहं विष्णो ब्रह्मविष्णुहराख्यया ।
सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलोऽपि सदा हरे ॥
(शिव० ज्ञान० ४-४१)

हे विष्णो ! मैं स्वभाव से निर्गुण होता हुआ भी संसार की रचना स्थिति एवं प्रलय के लिये क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र इन तीन रूपों में विभक्त हो रहा हूँ ।

विष्णु पुराण में भी विष्णु और शिव को समान मान कर महर्षि पाराशर ने विष्णु की स्तुति की है:—

नमो हिरण्यगर्भाय हरये शंकराय च ।

वृहद्धर्मपुराण में पार्वतीजी ने भगवान् विष्णु और शिव का परस्पर अलौकिक प्रेम देख दोनों से कहा है:—

यादृशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ केशव ।
मन्ये तया प्रमाणेन न भिन्नवसती युवाम् ॥
यादृशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ केशव ।
मन्ये तया प्रमाणेन आत्मैकोन्यतनुर्मिथः ॥

हे नाथ ! हे नारायण ! आप दोनों के अलौकिक प्रेम को देख कर तो यही समझ में आता है कि आपके निवास स्थान अलग अलग नहीं है। जो कैलास है वही वैकुण्ठ है और जो वैकुण्ठ है वही कैलास है, केवल नाम में ही भेद है। यही नहीं आपकी आत्मा भी एक ही है केवल शरीर दो हैं। इसी प्रकार

अभेद इसी में आगे भगवान् विष्णु ने लक्ष्मी के पूछने पर कहा है।

स एवाहं महादेवः स एवाहं जनार्दनः ।
उभयोरन्तरं नास्ति घटस्थजलयोरिव ॥

वास्तव में मैं ही जनार्दन हूँ और मैं ही महादेव हूँ। अलग अलग दो घड़ों में रक्खे हुए जलकी भांति मुझ में और उनमें कोई अन्तर नहीं है। कैवल्योपनिषद् में भी इसी प्रकार शिव, विष्णु का अभेद प्रतिपादन कर व्यापकत्व वर्णन किया :—

स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोक्षरः परमः स्वराट् ।
स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः ॥

यही भाव वेदों में भी प्रदर्शित किया गया है, जिसको देखने से भगवान् शिव की विष्णु से भिन्नता की स्वप्न में भी संभावना नहीं की जासकती। श्रुति कहती है।

"एकैव मूर्त्तिर्बिभिदे त्रिधास्यै"

एक ब्रह्म ही तीन रूप ब्रह्मा विष्णु और शिव के धारण कर लेता है।

महाकवि कालिदास ने अपने कुमारसम्भव के दूसरे सर्ग में इसी भाव को प्रदर्शित किया है:—

नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं प्राक्सृष्टेः केवलात्मने ।
गुणत्रयविभागाय पश्चाद्भेदमुपेयुषे ॥

नमो विश्वसृजे पूर्वं विश्वंतदनु बिभ्रते ॥
अथ विश्वस्य संहर्त्रे तुभ्यं त्रेधास्थितात्मने ॥

अर्थात् अव्यक्त दशा में जो तत्व एक है वही व्यक्त दशा में ब्रह्मा, विष्णु, और महेश के रूप में त्रिमूर्ति हो जाता है। सृष्टि, स्थिति संहार रूप कार्य करने से ब्रह्मा, विष्णु और शिव रूप से स्थित हे परमात्मन्! तुझे नमस्कार है।

बहुत से लोगों की धारणा है कि यह साम्प्रदायिक मनोमालिन्य विष्णु और शिव को एक न मान परस्पर हीन मानना तत्तत् पुराण और शास्त्रों द्वारा प्रचारित होगा। यह बात अनुचित है। देखिये शिवपुराण तथा विष्णुपुराण में भगवान् विष्णु और शिव की कैसी उत्तम एकता प्रतिपादित है। इनको देखने से साम्प्रदायिक विरोध का कोई पुष्ट मौलिक आधार प्रतीत नहीं होता। केवल शास्त्रीय तत्व से अपरिचित व्यक्तियों का निराधार चलाया हुआ मालूम होता है।

किसी आचार्य ने किसी ग्रन्थ में विष्णु से शिव को अथवा शिव से विष्णु को विशेषकर एक दूसरे की निन्दा नहीं की है। साम्प्रदायिक मतभेद पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय में विशेष दिखाई पड़ता है। किन्तु सम्प्रदाय के आचार्य श्रीमद्वल्लभाचार्य का शिव को हीन समझना कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता, अपितु भगवान् शिव को विष्णु से अभिन्न समझ अपने ग्रन्थों में शिव का मंगलाचरण किया है। वल्लभाचार्य के स्वरचित 'पत्रावलम्बन' नामक ग्रन्थ में देखिये:—

स्थापितो ब्रह्मवादो हि सर्ववेदान्तगोचरः ।
काशीपतिस्त्रिलोकेशो महादेवस्तु तुष्यतु ॥

यह सर्व श्रुत्युक्त ब्रह्मवाद मैंने स्थापित किया है इससे काशी-पति (विश्वनाथ) त्रिभुवनेश-महादेव मेरे ऊपर प्रसन्न हों ।

पूज्य चरण श्रीमद्वल्लभाचार्य ने अपने 'सिद्धान्त मुक्तावली' ग्रन्थ में त्रिगुणात्मक सृष्टि का विधान किया है, जिसमें भगवान् शिव की विष्णु से समानता ही प्रदर्शित की है ।

जगत्तु त्रिविधं प्रोक्तं ब्रह्मविष्णुशिवास्ततः ।
देवतारूपवत् प्रोक्ताः ····················· ॥

ब्रह्मा, विष्णु और शिव त्रिगुणात्मक जगत् को नियम में रखने के लिये निर्गुण ब्रह्म होते हुए भी उस उस जगत् के उपास्य देव कहे गये हैं ।

आचार्य चरण ने अपने 'तत्व ग्रन्थ में' शिव और विष्णु का भोग और मोक्ष दाता समान रूप से प्रतिपादन किया है:—

वस्तुनः स्थितिसंहारौ कार्यौ शास्त्रप्रवर्तकौ ।
ब्रह्मैव तादृशं यस्मात् सर्वात्मकतयेरितौ ॥
निर्दोषपूर्णगुणता तत्तच्छास्त्रे तयोः कृता ।
भोगमोक्षफले दातुं शक्तौ द्वावपि यद्यपि ॥

ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये तीन देवता निर्गुण हैं । निर्गुण परब्रह्म ही प्रकृति के तीन गुणों को नियम में रखने के लिये ब्रह्मा,

विष्णु और शिव रूप हो गये हैं। यद्यपि दोनों शिव और विष्णु भोग और मोक्ष देने में समर्थ हैं तथापि अपने-अपने शास्त्रों में उनको पूर्ण निर्दोष कहा है।

कुछ साम्प्रदायिक ग्रन्थों में शिव की अहंकार के अधिष्ठाता होने के कारण जीव कोटि में गणना की गई है, अहंकार का अध्यास जीव को ही होता है ईश्वर को नहीं अतः शिव ईश्वर नहीं हो सकते। उन एकाङ्गी साम्प्रदायिक मनोवृत्ति वालों को अपने आचार्य चरणों के सिद्धान्तों को देखने चाहिये। श्रीमद्‌वल्लभाचार्य चरणों ने शिव को कहीं जीव नहीं माना क्योंकि शिव को अहंकाराध्यास नहीं है, किन्तु वे अभिमान के देवता मात्र हैं। अतएव **शिवः शक्ति युक्तः** (श्रीमद्‌भागवत दशम स्कन्ध ८८-३३) पर सुबोधिनी के "अहंकाराभिमानेपीति" इस वाक्य की व्याख्या करते हुए वल्लभाचार्यजी लिखते हैं:—

'अहङ्काराध्यासो जीववन्नास्ति, किन्तु अभिमानमात्रमेव'

शिव को जीव की तरह अहङ्काराध्यास नहीं है, किन्तु वह केवल अभिमान के देवता हैं। और भी श्रीमद्‌भागवत के तीसरे स्कन्ध के बारहवें अध्याय के आठवें श्लोक की सुबोधिनी में भी यही लिखा है:—

स वैरुरोद देवानां पूर्वजो भगवान् भवः।
सतु भगवान् न जीवांशः ॥

वह शिव भगवान् है जीव नहीं। ऐसी दशा में शिव की जीव कोटि में गणना करना ठीक नहीं, प्रत्युत् श्रीमद्भागवत में शिव को गुणावतार कह कर ईश्वर बताया है। अत्रि की स्तुति है:—

विश्वोद्भवस्थितिलयेषु विभज्यमानै-
र्मायागुणैरनुयुगं विगृहीतदेहाः।
ते ब्रह्मविष्णुगिरिशाः प्रणतोऽस्म्यहं व-
स्तेभ्यः क एव भवतां म इहोपहूतः॥

(श्रीमद् भा० ४-१-२७)

जब अत्रि ऋषि पुत्र के लिये तप करने लगे तब उनके मस्तक से निकली हुई और उनके प्राणायाम से बढ़ी हुई अग्नि से त्रिभुवन को संतप्त देखकर तीन स्वरूप प्रगट हुए, वहाँ अत्रि ने उन तीनों स्वरूपों की स्तुति करते हुए कहा कि जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय के लिये प्रतियुगमें माया की सहायता से सत्व रज और तमोगुण से देह ग्रहण करने वाले विष्णु ब्रह्मा और शिव को प्रणाम करता हूँ। आप तीनों में वे कौन हैं जिनको मैंने बुलाया है। इस अत्रि स्तुति आदि आधारों पर ही पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त के अद्वितीय पक्षपाती पुरुषोत्तमजी महाराज को भी अपने 'उत्सव प्रतान' में लिखना पड़ा:—

अहङ्काराधिष्ठातुर्जीवत्वेऽपि गुणावतारस्येश्वरकोटित्वात्।

अहङ्कार के अधिष्ठाता की जीवकोटि में गणना होने पर भी गुणावतार भगवान् शिव की, ईश्वरकोटि में गणना होने के कारण जीवकोटि में गणना नहीं हो सकती।

पुष्टि मार्ग के मर्मज्ञ विद्वान् श्री बालकृष्ण भट्ट ने 'प्रमेय रत्नार्णव' नामक ग्रन्थ के अन्तर्गत 'मूल स्वरूप निरूपणम्' नामक प्रकरण में शिव तत्व का निर्णय करते हुए लिखा है:—

अप्राकृते तमसि विग्रहभूते वह्न्ययोगोलकन्यायेन प्रविष्टः शिवशब्दवाच्यो भवति ।

अग्नि जिस तरह लोहे के गोले में प्रवेश करती है, उसी तरह सृष्टि के आरम्भकाल में निर्गुण श्रीकृष्ण जब साकार भगवद्रूपात्मक अप्राकृत तमोगुण में प्रवेश करते हैं तब वह शिव कहलाते हैं ।

सम्प्रदाय के अद्वितीय पक्षपाती गोवर्द्धन भट्ट के 'वेदान्त चिन्तामणि' ग्रन्थ के द्वादश प्रकरण में उद्धृत पद्य से स्पष्ट है कि सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण के अधिष्टाता देव ब्रह्मा, विष्णु और शिव से उपासित परम शिव पृथक् हैं । देखिये:—

"उमार्द्धविग्रहः श्रीमान्सोमार्द्धकृतशेखरः ।
ब्रह्मविष्णुमहेशानैरुपास्यः परमेश्वरः ॥"

(वेदान्त चिन्तामणि १२ । ५)

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पुरुषोत्तमजी महाराज और बालकृष्ण भट्ट शिव को अहङ्कार और तमोगुण के अधिष्टाता देवता मानते हैं, परम शिव को नहीं ।

आचार्यचरण श्रीमद्वल्लभाचार्य की श्रीमद्भागवत (२-५-१६) श्लोक की व्याख्या में भी निर्गुण ब्रह्म (परम शिव) से सत्व,

रज और तमकी सृष्टि का भाव दृष्टिगोचर होता है:—

सत्वं रजस्तम इति निर्गुणस्य गुणास्त्रयः ।
सर्गस्थितिनिरोधेषु गृहीता मायया विभो ॥
यथोर्णनाभिः सृष्ट्यर्थमेकामूर्णामुद्गमते, तथा-
भगवानपि त्रिविधसृष्ट्यर्थं त्रीन् गुणानुद्गमते;
गुणरूपत्वाच्च गुणशब्दव्यवहारः । सद्रूपेणनिर्गतं
सत्वमित्युच्यते, केवल चिद्रूपेण निर्गतं क्रियाशक्ति
प्रधानत्वात् सदानन्दाभावाच्च रज इत्युच्यते,
आनन्दांशाच्च तमः । ते भगवद्रूपा एव भगवता
सृष्टाः । न च भगवति ते पूर्वंस्थिताः, तथा सति
भगवदात्मकास्ते न भवेयुः । यथा कार्पासे नहि
सूत्रं तदेवहि पश्चात् स्वावयवैः पौर्वापर्यमापद्य
मानं सूत्रतामापद्यते, अतएव भगवान् निर्गुणः ।
ते गुणाः, पुनः सर्गस्थितिनिरोधेषु उत्पत्तिस्थिति
लयार्थं गृहीताः, तेषामपि ग्रहणं मायया ।

अर्थात् मकड़ी जिस तरह जाला बनाने के लिये तन्तु निकालती है उसी तरह भगवान् भी आरम्भ काल में सदंश से सत्व, सदंश आनंदांश से रहित, क्रियाशक्ति प्रधान, केवल चिद्रूपसे रज और आनंदांश से तम की सृष्टि करते हैं। ये तीनों भगवद्रूप हैं । इनका और भगवान् का तादात्म्य सम्बन्ध है । जैसे रुई में सूत नहीं दीखता तोभी रुई के ही अवयवों के पौर्वापर्य

भाव से सूत बनता है उसी तरह भगवान् निगुण रहते हुए भी इन तीनों गुणों की सृष्टि करते हैं, और उत्पत्ति, स्थिति और लय के लिये इनका माया से ग्रहण करते हैं।

पाठक पुष्टिमार्गीय आचार्य एवं उनके मर्मज्ञ समर्थकों के उद्धरणों से भलीभाँति जान सकते हैं, कि पुष्टिमार्ग में शिव को निर्गुण ब्रह्म का अवतार मान अभेद सिद्ध किया है।

अब हम पुरातत्व की शोधपर दृष्टिपात करें तो, गुप्तकाल तक (३—४ शताब्दी) शिव विष्णुमें भेद मान एक दूसरे को हीन समझने की भावना दृष्टिगोचर नहीं होती। भेद बुद्धि एवं एक दूसरे को हीन समझने को भावना पीछे से चली हुई मालूम होती है। इसके प्रमाण में गुप्तकाल की दो मूर्तियाँ मिली हैं, जिनमें हरिहर की एकता दिखाई गई है। उनमें आधा भाग शिव और आधा भाग विष्णु का है। समस्त हिन्दूसंस्कृति का मूल मंत्र शिव विष्णु की एकता की अभिव्यक्ति इन मूर्तियों में है।

हम पुराण आदि धर्मशास्त्र, वेद उपनिषद्, और पुरातत्व की शोधों से इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि शिव और विष्णु दोनों एक ही हैं, केवल जिस प्रकार जलती हुई लालटेन में हम क्रमशः दो तरह की लाल और हरी चिमनी को लगाकर देखें तो मालूम पड़ेगा कि चिमनी की विभिन्नता से प्रकाश में कुछ भेद अवश्य प्रतीत होता है किन्तु वास्तव में प्रकाश में भेद नहीं है। इसी प्रकार गुणों के कारण एक ही निर्गुण ब्रह्म पृथक् पृथक् रूपों में व्यक्त होता है।

शिवनिर्माल्य

हमने यहीं भगवान् श्रीएकलिङ्ग के दुग्ध, आम्ररस तथा श्रीखण्ड आदि के अभिषेक होने पर बहुत से व्यक्तियों को कहते हुए सुना है कि शिवनिर्माल्य अग्राह्य होते हुए भी कर्मचारी होने के कारण हम ग्रहण करने में विवश हैं। शिक्षित समाज में भी शिवनिर्माल्यग्रहण पर नाना प्रकार के प्रश्न उठते हुए सुन पड़ते हैं। इस प्रकार शिक्षित से लेकर साधारण जनता तक में शिव-निर्माल्य ग्रहण पर बहुत भ्रम फैला हुआ देख शास्त्रीय मर्यादा पाठकों के सामने रखने की आवश्यकता प्रतीत होती है।

हम शिवनिर्माल्य पर शास्त्रों के निषेधात्मक और परिहारात्मक वचन उद्धृत कर जनता के सन्देह को दूर करने का प्रयत्न करेंगे कि किस शिवमूर्ति के नैवेद्यादि को ग्रहण करना उचित है और किसका ग्रहण निषिद्ध है। शास्त्रीय व्यवस्था के पहले हमें निर्माल्य शब्द का अर्थ जानना आवश्यक है। निर्माल्य शब्द का स्कन्द पुराण में सूतजी ने यह लक्षण किया है:—

विसर्जितस्य देवस्य गन्धपुष्पनिवेदनम्।
निर्माल्यं तद्विजानीयाद् वर्ज्यं वस्त्रविभूषणम्॥

अर्थात् वस्त्र और आभूषणों को छोड़ कर जो कुछ गन्ध, पुष्पादि अर्पित किये गये हों, उसे निर्माल्य जानना चाहिये, वायु-संहिता में निर्माल्य के छ भेद प्रतिपादित किये हैं:—

देवस्वं देवताद्रव्यं निवेद्यं च निवेदितम् ।
चण्डद्रव्यं बहिःक्षिप्तं निर्माल्यं षड्विधं स्मृतम् ॥
देवस्वं ग्राम्यभूम्यादि दासीदासचतुष्टयम् ।
हेमरूप्यकरत्नादि देवद्रव्यमिति स्मृतम् ॥
यत्संकल्पितं देवाय पत्रं पुष्पं फलं जलम् ।
अन्नपानादि तत्सर्वं निवेद्यमिति कीर्तितम् ॥
शिवोपभुक्तस्रग्गन्धमन्नपानादिकं तथा ।
निवेदितमिति प्रोक्तं सर्वपापहरं परम् ।

देवस्व (ग्रामभूमि दास दासी) देवताद्रव्य (हेमरजत रत्नादि) निवेद्य (संकल्पित पत्र, पुष्प, फल, जल अन्न पान आदि) निवेदित (चढ़ाये हुए माला गन्ध अन्न पानादि) चण्डद्रव्य और लिङ्ग से उतार कर वाहिर डाली हुई वस्तुएं ये छ प्रकार का निर्माल्य कहा गया है।

शास्त्रों में प्रतिपादित वचनों के अनुसार विसर्जित शिवनैवेद्य और शिवलिङ्ग पर चढ़ाई हुई वस्तुओं को भी शिवनिर्माल्य समझने का संकेत मिलता है।

अब शिवनिर्माल्यादि की अग्राह्यता के प्रतिपादक वचन देखिये:—

लिङ्गार्चन तन्त्र द्वादश पटल में प्रतिपादन किया है:—

यत्किञ्चिदुपचारं हि लिङ्गोपरि निवेदयेत् ।
तन्निर्माल्यं महेशानि अग्राह्यं परमेश्वरि ॥

जो कुछ वस्तु लिङ्गपर चढाईजाय, उस निर्माल्य को हे पार्वति! ग्रहण नहीं करना चाहिये।

शिवनिर्माल्यभोक्तारः शिवनिर्माल्यलङ्घकाः ।
शिवनिर्माल्यदातारः स्पर्शस्तेषां हि पुण्यहृत् ॥
लोभान्नधारयेच्छम्भोर्निर्माल्यं न च भक्षयेत् ।
न स्पृशेदपि पादेन लंघयेन्नापि नारद ॥

(कालिका पुराण)

इस प्रकार शिवनिर्माल्यभक्षक लङ्घक और दाता तक के स्पर्श का निषेध है।

अग्राह्यं शिवनैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् ।
शालग्रामशिलासङ्गात् सर्वं याति पवित्रताम् ॥

(शिवपुराण विद्येश्वर० २२-१९)

इस वचन के अनुसार शिवनैवेद्य, पत्र, पुष्प, फल और जल सब अग्राह्य ही हैं, किन्तु शालग्राम की मूर्ति के स्पर्श से पवित्रता का विधान है।

पद्मपुराण में स्वयं शिव के वचन हैं:—

अनर्हं मम नैवेद्यं पत्रं पुष्पं जलम् ।
मह्यं निवेद्य सकलं कूप एव विनिःक्षिपेत् ॥

मेरा नैवेद्य, पत्र पुष्प फल और जल अग्राह्य हैं। मुझे अर्पण-कर सब वस्तुएँ कुए में फेंक देनी चाहिये।

स्कन्दपुराण में सूत के वचन देखिये:—

अर्पयित्वा तु ते भूयश्चण्डेशाय निवेदयेत् ।

शिव को गन्ध पुष्पादि अर्पण कर चण्डेशको देदेना चाहिये।

निर्णय सिन्धु में भी इसी प्रकार वचन उद्धृत कर स्पष्ट कर दिया है कि कौनसी वस्तुएँ चढ़ाने बाद चण्ड को नहीं देनी चाहियेः—

धनहिरण्यगोरत्नताम्ररौप्यांशुकादिकान् ।
विहाय शेषं निर्माल्यं चण्डेशाय निवेदयेत् ॥

वस्त्र, भूषण, सुवर्ण, चान्दी, ताम्र, भूमि गाय आदि छोड़कर शेष निर्माल्य चण्डेश्वर को अर्पण कर देना चाहिये।

शिवपुराण विद्येश्वर संहिता में निर्माल्यादि शिवार्पित वस्तुओं का जो चण्डेश्वर के भाग हैं, ग्रहण करने का स्पष्ट निषेध हैः—

चण्डाधिकारोयत्रास्ति तद्भोक्तव्यं न मानवैः ।

(२२ । १६)

शिवपुराण में जिन लिङ्गों के निर्माल्य नैवेद्यादि में चण्ड का अधिकार नहीं है, उसका भी विधान कर दिया हैः—

बाणलिङ्गे च लौहे च सिद्धलिंगे स्वयम्भुवि ।
प्रतिमासु च सर्वासु न चण्डोऽधिकृतो भवेत् ॥

(शिव० विद्येश्वर २२ । १७)

वाणलिङ्ग (नर्मदेश्वर) लोहनिर्मित लिङ्ग, सिद्धलिङ्ग (जिन लिङ्गो की उपासना से किसीने सिद्धि प्राप्त की हो, अथवा सिद्धों

न यस्य शिवनैवेद्यग्रहणेच्छा प्रजायते ।
स पापिष्ठो गरिष्ठः स्यान्नरकं यात्यपि ध्रुवम् ॥
शिवदीक्षान्वितो भक्तो महाप्रसादसंज्ञकम् ।
सर्वेषामपि लिङ्गानां नैवेद्यं भक्षयेच्छुभम् ॥

शिव के नैवेद्य को देखकर पाप दूर चले जाते हैं, और खाने पर करोड़ों पुण्य आ जाते हैं। शिव नैवेद्य ग्रहण करने से शिव सायुज्य की प्राप्ति होती है। शिव नैवेद्य को सर से प्रणाम कर शिव के स्मरण के साथ खाना चाहिये। जिसको शिवनैवेद्य ग्रहण करने की इच्छा नहीं होती, वह महा पापी नरक गामी होता है। शिव मन्त्र से दीक्षित पुरुष को सब लिङ्गों का नैवेद्य ग्रहण करना चाहिये।

जिन पुरुषों की शिव मन्त्र में दीक्षा हुई हो उनके लिये तो सब लिङ्गों के नैवेद्य चाहे चण्डांशही क्यों न हो, भक्षण करने का विधान है। जो अन्य देवताओं के मंत्रों से दीक्षित हैं, उनको मुख्य मुख्य शिवलिङ्गों के नैवेद्य को ही ग्रहण करना चाहिये। देखिये शिव पुराण विद्येश्वरी संहिता अध्याय २२ में प्रतिपादित है:—

अन्यदीक्षायुतनृणां, शिवभक्तिरतात्मनाम् ।
शृणुध्वं निर्णयं प्रीत्या, शिवनैवेद्यभक्षणे ॥ १२ ॥
शालग्रामोद्भवे लिङ्गे रसलिङ्गे तथा द्विजाः ।
पाषाणे राजते स्वर्णे सुरसिद्धप्रतिष्ठिते ॥ १३ ॥

काश्मीरे स्फाटिके रात्ने ज्योतिर्लिङ्गेषु सर्वशः ।
चान्द्रायणसमं प्रोक्तं शम्भो र्नैवेद्यभक्षणम् ॥ १४ ॥
ब्रह्महापि शुचिर्भूत्वा निर्माल्यं यस्तु धारयेत् ।
भक्षयित्वा द्रुतं तस्य सर्वपापं प्रणश्यति ॥ १५ ॥

शालग्राम शिला के स्थान में उत्पन्न, पारद, पाषाण, चान्दी, सुवर्ण से निर्मित लिङ्ग में, देवता तथा सिद्धों से प्रतिष्ठित लिङ्ग में, केशर से निर्मित लिङ्ग में, स्फटिक के लिङ्ग में, रत्न के बने हुए लिङ्ग में, सर्वज्योतिर्लिङ्गों* में श्री शिव का नैवेद्यभक्षण चान्द्रायण व्रत के समान पुण्य जनक है। ब्रह्म हत्या करने वाला पुरुष

---

* शिवपुराण के अनुसार निम्न लिखित ज्योतिर्लिङ्ग हैं:—

सौराष्ट्रे सोमनाथञ्च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम् ।
उज्जयिन्यां महाकालमोङ्कारे परमेश्वरम् ॥
केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशङ्करम् ।
वाराणस्याञ्च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे ॥
वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने ।
सेतुबन्धेच रामेशं घुश्मेशञ्च शिवालये ॥
द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
सप्तजन्मकृतं पापं स्मरणेन विनश्यति ॥
यं यं काममपेक्ष्येव पठिष्यन्ति नरोत्तमाः ।
तस्य तस्य फलप्राप्तिर्भविष्यति न संशयः ॥

भी यदि पवित्र होकर शिव निर्माल्य धारण करे और भक्षण करे तो उसका सारा पाप नष्ट हो जाता है।

इन वाक्यों से स्पष्ट होगया कि उपर्युक्त लिङ्गों के नैवेद्य और निर्माल्य को शिव दीक्षारहित मनुष्य भी ग्रहण कर सकता है। इनके अतिरिक्त पार्थिवादि लिङ्गों के नैवेद्यादि का केवल शिवमंत्र से दीक्षित के ही लिये विधान है।

अब हम शिवनिर्माल्य के विषय में व्यवस्था देते हुए शास्त्रों के निषेध और परिहार के वचनों के आधार पर इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि नर्मदेश्वरलिङ्ग, धातुनिर्मितलिंग, रत्नलिंग, ज्योतिर्लिंग, स्वयम्भूलिंग (केदारेश्वर प्रभृति) सिद्धलिंग (एकलिंग आदि) पर चढाये हुए निर्माल्य ग्रहण तथा भक्षण करने में कोई दोष नहीं है, अपितु बहुत पुण्य की प्राप्ति होती है।

शिव-चरित्र

अखिलदेववन्द्य भगवान् शिव के चरित्र पर लेखनी उठाना "प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्वाहुरिव वामनः" अर्थात् लम्बे पुरुष के प्राप्त होने योग्य फल के लिये ऊंचे हाथ कर उछलते हुए बौने की तरह, इस कालिदास की उक्ति के अनुसार हास्यास्पद एवं अनधिकार चर्चा है। शिव का चरित्र चित्रण करना ऋषि महर्षियों की शक्ति के बाहिर होने पर भी हृद्गत भगवान् शिव न मालूम मुझे बार २ क्यों प्रेरित करते हैं? इस भीतर की प्रेरणा ही के कारण भगवान् शिव के अगम्यचरित्र पर मुझे उद्गार प्रकट करने का साहस करना पड़ा है।

पौराणिक कथा एवं स्वरूप के आधार पर ही यहां शिव चरित्र और उसकी शिक्षायें लिखने का प्रयत्न किया जाता है।

शिव का त्याग

भगवान् शिव निवृत्ति मार्ग के अधिष्ठाता हैं। निवृत्ति मार्ग में त्याग ही की प्रधानता होने से शिव में आदर्श त्याग पाया जाता है। आदर्श त्यागी होने ही के कारण शास्त्रों में शिव को त्यागराज (योगिराज) कहा है। इसी निवृत्तिमार्ग के प्रधान अङ्ग, त्याग के कारण शिव समस्त सांसारिक भोग के पदार्थों का त्याग करते हैं। त्याग की महत्ता भी तो उसी में है कि समस्त भोगों के विद्यमान रहते उनमें आसक्ति न हो। इस विषय में कविकुलगुरु

कालिदास की "विकार हेतावपि विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीरा:" अर्थात् विकार के कारण की उपस्थिति में भी जिनके चित्त विकृत नहीं होते, वे ही धीर कहे जाते हैं।" यह उक्ति भी भगवान् शिव के लिये अक्षरशः संघटित होती है। वे भक्तों को सांसारिक समस्त ऐश्वर्य क्षणमात्र में प्रसन्न हो प्रदान करने का सामर्थ्य रखते हुए भी स्वयं उत्तम उत्तम वस्त्र न पहन गजचर्म लपेट लेते हैं। बहुमूल्य आभूषण न पहन सर्पधारण कर लेते हैं। अङ्ग पर अच्छे अच्छे चन्दनादि के उबटन न लगा श्मशान की भस्म लगाते हैं। आप सुगन्धित पुष्पों को त्याग कर आक और धतूरे के पुष्पों से ही प्रसन्न रहते हैं। ऐश्वर्यसूचक रथादि की सवारी न कर वृद्ध वृषभ की ही सवारी करते हैं। त्याग ही में अनन्त सुख समझ आशुतोष ने इसे अपनाया है। इस आदर्श त्याग की प्रशंसा शेष अपने सहस्र मुख से भी करने में असमर्थ है।

पाठक शिव के इस त्याग से ही सन्तुष्ट न हों, उनका एक महान् त्याग ऋषि महर्षियों के भी नेत्रों में जल लाये विना नहीं रहता—वह है परम पुनीता भार्या सती का त्याग। सती के त्याग की कथा प्रसिद्ध होने पर भी संक्षेप से यहां दिग्दर्शन कराया जाता है। एक वार त्रेतायुग में अगस्त्य के आश्रम से सती के साथ आते हुए शिव की दण्डकारण्य में सीताहरण के कारण पत्नीवियोग में दुःखित रामचन्द्र से भेंट हुई। वहां सर्वज्ञ शिव ने रामचन्द्र को 'जय सच्चिदानन्द' कह प्रणाम किया। इस पर सती को सन्देह हुआ कि एक साधारण राजकुमार को शिव ने

'सच्चिदानन्द' कह प्रणाम क्यों किया ? इस पर शिव ने राम को विष्णु का अवतार कह सती का समाधान करना चाहा, किन्तु दैवदुर्विपाक से सती का सन्देह दूर न हुआ तब शिव को विवश हो, विवेक के साथ जाकर परीक्षा लेने की आज्ञा देनी पड़ी। दैव वश सती अन्य उचित उपाय न कर सीता का वेश बना मार्ग में बैठ गई। सीता के अन्वेषण में तत्पर राम ने ज्योंही सती को सीता के वेष में देखा, त्यों ही उसे पहिचान शिव की कुशलता के लिये पूछा। इस पर सती बहुत लज्जित हो शिव के पास चली गई।

इधर शिव ने सती का सीता के वेष बना परीक्षा लेने के कारण सदा के लिये त्याग कर दिया।

इस कथासे भगवान् शिव का अलौकिक चरित्र पाठकों के सामने आता है। भगवान् शिव की एक पत्नी व्रतधारी होने के कारण, सीता में परस्त्री होने के नाते और रामपत्नी होने से मातृ-भावना थी। अब यह कैसे संभव था कि भगवान् शिव सीता के वेष को बनाने वाली सती के साथ पत्नीभाव रखते।

भगवान् शिव के अतिरिक्त ऐसा कौन दृढ़ संयमी एवं आदर्श त्यागी हो सकता है जो परस्त्री में मातृभावना होने के कारण अपनी विशुद्ध पत्नी का केवल वेष बनाने पर ही त्याग कर देवे। भगवान् शिव ही भावों के दूषित होने की आशङ्का से इतनी सूक्ष्म-दृष्टि से विचार कर सकते हैं। यह है भगवान् शिव का अनन्य-साध्य आदर्श त्याग। इससे शिव को दृढ़ संयमी, परस्त्री में मातृ-भावना रखने वाले परम योगी कहना उचित प्रतीत होता है।

इस कथा से अनन्त सुख की अभिलाषा रखने वालों को आदर्श त्याग तथा परस्त्री में मातृभावना रखने की शिक्षा ग्रहण कर अपने जीवन को कृतकृत्य करना चाहिये।

परोपकार

एक समय देवता और असुरों ने मिल कर क्षीर समुद्र का मन्थन किया। मन्थन होने पर सबसे पूर्व महोल्वण हलाहल नामक विष निकला। उग्र वेग से दशों दिशाओं में फैलने वाले उस विष के दाह से देवों सहित सम्पूर्ण विश्व जलने लगा। इस भयानक आपत्ति से रक्षा पाने के लिये देवगण विष्णु के पास गये। तदनतर विष्णु की आज्ञा से आशुतोष शंकर की शरण में जा दाहसे रक्षाकी प्रार्थना करने लगे। देवों की प्रार्थना सुन करुणा-सागर का हृदय पिघल गया। शीघ्र ही विश्व को आपत्ति से मुक्त करने के लिये अपनी कुछ भी परवाह न कर, हमारे सामने परोप-कार का महान् आदर्श उपस्थित कर उस भयङ्कर विष को भोला-नाथ ने चढ़ा लिया। विष का दाह इतना प्रबल था कि स्वयं शिव को भी दाह के शमन के लिये मस्तक पर चन्द्र और गंगा को धारण करना पड़ा।

विषपान करते समय यह भी स्मरण रक्खा कि हृदयस्थित ईश्वर को कहीं विषस्पर्श न होजाय, एतदर्थ उन्होंने विष को कण्ठ में ही रोक मानों ईश्वर पर भी दया की। हलाहल विष कण्ठ में नीलवर्ण हो भूषण बन गया। इसी कारण शङ्कर को नीलकण्ठ

भी कहते हैं। इस प्रकार विषपान कर भगवान् शिवने विश्व का भारी उपकार किया। यह सृष्टि हमें भगवान् शङ्कर के इस महान् कार्य का सदा स्मरण कराती रहेगी कि उन्होंने किस प्रकार संसार की रक्षा के लिये वीरोचित अनन्य साध्य कार्य किया। इसी प्रकार उन्होने गङ्गा लाने पर सम्पूर्ण विश्व के जलमय होने की भीति से भगीरथ की गङ्गाधारण की प्रार्थना शीघ्र ही स्वीकार करली। इन्हीं प्रसंगों में शिव के विषय में लिखा हुआ अप्पय दीक्षित का एक पद्य उपयुक्त प्रतीत होता है। वे लिखते हैं:—

गङ्गा धृता न भवता शिव पावनीति,
नास्वादितो मधुर इत्यपि कालकूटः।
त्रैलोक्यरक्षणकृता भवता दयालो,
कर्मद्वयं कलितमेतदनन्यसाध्यम् ॥

हे भगवन्! 'पवित्र करने वाली है,' इस बुद्धि से आपने गङ्गा को धारण नहीं किया है, तथा मधुर लगने के कारण आपने विष का भी पान नहीं किया है। आप त्रैलोक्य की रक्षा करने वाले हैं, अतएव ये दोनों बड़े कार्य, जो अन्य देवताओं से नहीं होसकते थे, आपने किये हैं।

कामविजय

शिव का पार्वती के साथ विवाह होजाय इसके लिये इन्द्र ने कामदेव को शिव के मन में विकृति उत्पन्न करने के लिये उनकी तपोभूमि में भेजा। कामदेवने वहां जाकर अपना प्रभाव फैलाया

और पार्वतीके वहां आने पर उसने शिवके मनमें विकृति उत्पन्न की। विकृति उत्पन्न होने पर शिवने क्रोध कर अपने आपको संभाला इतने में वृक्ष के पत्र के नीचे छिपा हुआ काम दिखाई दिया। मनोविकृतिमें उसी को कारण समझ क्रोधाग्नि धधक गई और तत्क्षण तृतीयनेत्राग्निने देखते२ कामको भस्म कर डाला। भगवान् शिवका क्रोध कालिदास के शब्दों में यों अङ्कित हुआ है:—

क्रोधं प्रभो संहर संहरेति, यावद्गिरः खे मरुतां चरन्ति।
तावत्स वह्निर्भवनेत्रजन्मा, भस्मावशेषं मदनं चकार॥

काम के ऊपर क्रोध आते ही आकाश से ज्योंही देवगण "हे प्रभो! क्रोध रोकिये रोकिये" कह ही रहे थे तब तक तो शिव तृतीय नेत्र से उत्पन्न अग्निने काम को भस्मशेष करही डाला।

त्रैलोक्य विजयी काम शिवपर विजय प्राप्त तो नहीं कर सका अपितु उसने अपना अस्तित्व भी मिटा दिया।

इस कथा से 'शिव' पाठकों के सामने उज्ज्वल चरित्र वाले और कामविजयी के रूपमें आते हैं। काम और काञ्चन पर विजय ही को संसार में सार वस्तु समझ, निरीह भगवान् भूत-भावन की तरह अनन्त सुख की प्राप्ति के लिये हमें काम पर विजय प्राप्त करना चाहिये।

शिव की दयालुता—

काम को भस्म करने पर उसकी पत्नी रति ने पति के लिये बहुत विलाप किया। उस पर दयालु शिव धैर्य न रख सके और

प्रसन्न हो काम को अनङ्ग रूप में जीवित कर दिया।

महिषासुर का पुत्र गजासुर ब्रह्मा के वर से असीम शक्ति प्राप्त कर गणों को कष्ट देता हुआ शिव के पास पहुँच गया। शिव ने उसको त्रिशूल में टांगकर आकाश में लटका दिया। तब उसने वहीं से शिव की बड़ी भक्ति से स्तुति की। स्तुति पर प्रसन्न हो उसकी प्रार्थना के अनुसार अपने शरीर में उसके चर्म को धारण करने का वरदान दिया। तब से भगवान् चन्द्रशेखर गजचर्म धारण करने वाले (कृत्तिवासा) कहे जाते हैं।

वृत्रासुर जब शिव को प्रसन्न करने के लिये अपना शरीर काट काट कर हवन करने लगा, तब परम कारुणिक भगवान् पार्वतीपति से न रहा गया। शीघ्र ही अग्नि कुण्ड से प्रकट हो उसे दोनों भुजाओं से निवारण करते हुए कहाः—

तमाह चाङ्गालमलं वृणीष्व मे,
यथाभिकामं वितरामि ते वरम्।
प्रीयेय तोयेन नृणांप्रपद्यता-
महो त्वयात्माभृशमर्द्यतेवृथा।

श्रीमद्भागवत १०। ८८। २०.

पुत्र बस कर बस, व अपनी इच्छा के अनुसार वर मांग। मैं तो केवल जल मात्र से प्रसन्न हो जाता हूँ, फिर तू अपनी आत्मा को कष्ट क्यों देता है ?

इन कथाओं के आधार पर शिव कितने दयालु हैं, यह सहज

ही में प्रकट हो जाता है। शिव शत्रुओं पर भी करुणा कर वरदान देने लगते हैं। इनके अतिरिक्त कौन ऐसा देव होगा जो शत्रुओं पर इस प्रकार दया करता हो। इन लोकोत्तर गुणों के कारण ही तो करुणासागर भगवान् शंकर 'आशुतोष' कहे जाते हैं।

यदि हम शिव के इस आदर्श चरित्र से शत्रुओं से भी द्वेषाग्नि से न जलने की भावना, दीनों पर दया और क्रोध को भी दवा कर शीघ्र प्रसन्न होने की शिक्षा ग्रहण कर नरजन्म का वास्तविक लाभ प्राप्त करें तो क्या ही अच्छा हो। इस प्रकार प्रत्येक कथा से भगवान् शिवका अलौकिक चरित्र हमारे सामने आकर नर समाज को नाना प्रकार की शिक्षाएं प्रदान करता है। ग्रन्थ के विस्तार भय से अधिक कथायें न देकर साधारण संकेतमात्र कर दिया है।

अर्ध नारीश्वर

भगवान् शङ्कर के स्वरूपों में अर्धनारीश्वर का एक मुख्य स्थान है अतएव इसका वर्णन भी यहां आवश्यक है। अर्धनारीश्वर की कई एक प्राप्त हुई प्राचीन मूर्तियें तथा शास्त्रों में कई स्थलों पर महेश्वरके अर्धनारीश्वर स्वरूप का वर्णन मिलता है। इसमें आधा भाग जगज्जननी पार्वती का और आधा भाग विश्वके कल्याणकर्ता भगवान् शंकर का रहता है। भक्त लोग अर्धनारीश्वर की मूर्ति एवं वर्णन पर अपने आप को न्योछावर करदेते हैं।

कविसम्राट् 'कालिदास' ने तो रघुवंश महाकाव्य में—

"वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये। जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ"

कह भगवान् शङ्कर के अर्धनारीश्वर स्वरूप का ही मङ्गलाचरण किया है।

इस स्वरूप से हमारे सामने आदर्श दाम्पत्यप्रेम तथा नारी समाज के पूर्ण आदर करने की शिक्षा आती है। इसी आदर्श को सामने रख दाम्पत्यप्रेम की वृद्धि के लिये महिलायें शिव सम्बन्धी कई व्रतादि करती हैं। आज भारत अर्धनारीश्वर के स्वरूप से शिक्षा ग्रहण कर नारीसमाज के प्रति अवहेलना की दृष्टि त्याग दे तो जो आज नारीजगत् में असंतोष की लहर ऊठ रही है, वह शमन हो गार्हस्थ्य जीवन सुखमय होजाय।

जगद्गुरु शिव

आपका विश्व में एक वृहत् परम कल्याणकारी कार्य जगद्गुरु के रूप में नाना प्रकार की विद्यायें, योग, ज्ञान और भक्ति का प्रचार करना है।

शास्त्रों के आधार पर आप योग की अनन्त कलाओं के पूर्ण ज्ञाता, भक्ति के प्रवर्तक, आयुर्वेद के अधिष्ठाता, संगीत के आदि आचार्य तन्त्र, मन्त्र, सामुद्रिक और ज्यौतिष शास्त्रों के प्रचारकर्ता धनुर्वेद के उपदेशक, व्याकरण शास्त्र के सञ्चालक, नृत्यविद्या के उत्पादक और शेष समस्त विद्याओं के परम निधि हैं।

शिव के समस्त विद्याओं के स्रोत होने ही के कारण विद्या-

मिलाषी को शिव की उपासना करने का विधान है। भगवान् शिव के स्वरूप, कार्यकलाप, आहार विहार, संयम, नियम, रहन सहन आदि से नाना प्रकार की शिक्षायें प्राप्त होती हैं, जिनपर चल कर जगत् जीवन्मुक्ति का परमानन्द प्राप्त कर सकता है।

शिव सूक्तियां

संस्कृत साहित्य में शिव

संस्कृत और हिन्दी साहित्य में शिव विषयक हजारों सूक्तियां हैं। प्रायः सभी कवियों ने शिव पर कुछ न कुछ अवश्य लिखा है। पाठकों के मनोरंजनार्थ कतिपय सूक्तियाँ हम यहाँ उद्धृत करते हैं।

तपस्या में संलग्न पार्वती के सामने जब भगवान् शंकर ने ब्रह्मचारी के वेष में जा अपने में बहुत दोष बताये, तब महाकवि कालिदास के शब्दों में पार्वती का उत्तर यों अङ्कित हुआ है।

अकिञ्चनः सन् प्रभवः स सम्पदां,
त्रिलोकनाथः पितृसद्मगोचरः।
स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते,
न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः॥

अर्थात् शिव परम दरिद्र होकर भी सब सम्पत्तियों के उद्गम स्थान हैं। वे श्मशानवासी होकर भी तीनों लोकों के नाथ हैं। भयानक रूप में रहने पर भी उनका नाम 'शिव' (कल्याणकारी) है। सत्य तो यह है कि शङ्कर का यथार्थ तत्व कोई जानता ही नहीं कि वे क्या हैं और कैसे हैं।

शिव के करुण स्वभाव के सम्बन्ध में महाकवि विशाखदत्त की आशीर्वादात्मक उत्तम उक्ति देखिये।

करने वाले भगवान् शिव तुम्हारी रक्षा करें।

पुत्र जन्म की बधाई देने वाले ब्रह्माजी को शिव का पुरस्कार देखिये:—

श्रुत्वा षडाननजनुर्मुदितान्तरेण,
पञ्चाननेन सहसा चतुराननाय।
शार्दूलचर्म भुजगाभरणं स भस्म,
दत्तं निशम्य गिरिजाहसितं पुनातु।

भगवान् शिवने कार्तिकेय का जन्म सुन ब्रह्मा को पुरस्कार में व्याघ्रचर्म (दुशाला) आभूषण सर्प (कड़े) माङ्गलिक कुंकुमादि वहां है ही क्या, थोड़ा भस्म ही लगा दिया। अपने घर की बधाई की इस उदारता को सुन कर पार्वती एक दम हंस पड़ी। वही गिरिजा का हास्य हमें पवित्र करे।

कवि शिव की दरिद्रता को लक्ष्य कर कहता है:—

सहस्रास्यो नागः प्रभुरपि मतः पञ्चवदनः।
षडास्यो हन्तैकस्तनय इतरो वारणमुखः॥
सदा भैक्ष्यं शश्वत्प्रभवतु कथं वर्तनमिति।
श्वसन्त्यां पार्वत्यामथ जयति शम्भुः स्मितमुखः॥

पार्वती अपनी गृहस्थितिदेखकर घबराती हैं कि एक एक मुख वालों के पालन में भी कठिनता रहती है तो फिर यहां तो घर में हजार मुखवाला एक सर्प है जिसके एक एक मुख के लिये छटांक छटांक भर भी दूध देना पड़े तो भी डेढ मन से ऊपर होता है।

पति के भी पांच मुख हैं। गृहस्थिति ठीक न होने से सन्तति-निग्रह हो जाता तो भी अच्छा, किन्तु यहां तो एक नहीं दो पुत्र हैं। जिनमें एक के छ मुख और दूसरे के हाथी का मुख होने के कारण वे भी भोजन के समय पंसेरियों से बात करते हैं। गजानन तो हर समय मोदकों के लिये लालायित ही रहते हैं। घर में आमदनी का यह हाल है कि प्रतिदिन भीख मांगने से काम चलता है। अब किस प्रकार काम चलेगा। यों पार्वती चिन्ता के कारण दीर्घ निश्वास लेती है उस समय भगवान् शिव मन ही मन मुसकराते हैं, वही शिव हमारी रक्षा करें।

शिव की दरिद्रता देख पार्वती की अपने पति को कृषि की सम्मति एक कवि के वचनों में देखिये:—

रामाद्याचय मेदिनीं धनपतेर्बीजं बलाल्लाङ्गलं,
प्रेतेशान्महिषं तवास्ति वृषभः फालं त्रिशूलं तव।
शक्ताहं तव चान्नदानकरणे स्कंदोऽस्ति गोरक्षणे,
खिन्नाहं हर भिक्षया कुरु कृषिं गौरीवचः पातु वः।

परशुराम से थोड़ी भूमि मांगलो। कुबेरसे बीज और बलराम से हल मांगलो। अब रही आवश्यकता बैलों की, सो एक तो तुम्हारे पास है ही, दूसरे के लिए और नहीं तो धर्मराज से एक भैंसा ही ले लो। हल में फाल की आवश्यकता तो तुम्हारा त्रिशूल ही पूरी कर देगा। रहा तुम्हें रोटी पहुँचाने का काम सो मैं पहुँचा दूंगी। जानवरों के चराने का काम कार्तिकेय कर लेगा। हे महादेव, मैं तो तुम्हारे इस भीख मांगने से तंग आ गई। भीख

मांगना भी तो नहीं आता एक बार भीख मांग कर कृपि कर लो। बाद में भीख से छुटकारा मिल जायगा। ऐसे गौरी के वचन तुम्हारी रक्षा करें।

महादेव की भिक्षा पर कवियों की अद्भुत कल्पनायें दिखाई पड़ती हैं। एक कवि की अर्धनारीश्वर भगवान् शिव पर उक्ति देखिये।

उदरद्वयभरणभयादर्द्धाङ्गाहितदारः।
यदिनैवं तस्य सुतः कथमद्यापि कुमारः॥

शिव ने देखा कि अपने घर में दो पेट पालना कठिन होगा, इसलिये पहले से अपने ही आधे अंग में पत्नी को रख लिया, जिससे एक पेट भरने से भी काम चल जाय यदि यह बात नहीं है तो उनका पुत्र अब तक कुंआरा क्यों है।

शंकराचार्य ने पार्वती की स्तुति करते हुए भगवान् शिव की सामग्री का वर्णन कर ऐश्वर्य में पार्वती के सौभाग्य को कारण बताया है:—

वृषो वृद्धो यानं विषमशनमाशा निवसनं,
श्मशानं क्रीडाभूर्भुजगनिवहो भूषणविधिः।
समग्रा सामग्री जगति विदितैव स्मररिपो-
र्यदेतस्यैश्वर्यं तव जननि सौभाग्यमहिमा॥

सवारी के लिये बुड्ढा बैल, खाने के लिये जहर, रहने के लिये दिशायें, खेलने के लिये श्मशान और आभूषण के लिये सांप हैं।

यह सर्व सामग्री भगवान् शङ्कर की जगत्प्रसिद्ध ही है। उसका यह ऐश्वर्य तो हे माता, तेरे सौभाग्य के कारण है।

एक कवि की शिव के जटाजूट के अन्दर गंगा में तैरते हुए चन्द्रमा पर कैसी उत्तम सूक्त है। देखिये—

उत्क्लेशं केशबन्धः कुसुमशररिपोः कल्मषं वः समुष्या-
घत्रेन्दुं वीक्ष्य गंगाजलभरलुलितं बालभावादभूताम्।
क्रौञ्चारातिश्च फाण्टस्फुरितशफरिकामोहलोलेक्षणश्रीः
सद्यप्रोद्यन्मृणालीग्रहणरसलसत्पुष्करश्च द्विपास्यः॥

बालक कार्तिकेय और गजानन दोनों ही भूख के मारे खाने की तलाश में इधर उधर देख रहे हैं। पिताजी के जटाजूट में गंगा में तैरता हुआ चन्द्रमा दिखाई पड़ता है। उसको कार्तिकेय तो मठे के अन्दर फड़कती हुई मछली समझ कर लालच भरे चञ्चल नेत्र डाल रहे हैं, और गणेश जल में से निकला हुआ सफेद कमल कन्द समझ कर (सूँड) बढाना चाहते हैं। वही शिव का केशबन्ध (जटाजूट) तुम्हारे पाप को दूर करे।

अब जरा शिव के घर का कलह देख लीजिये:—

अत्तुं वाञ्छति वाहनं गणपते राखुं क्षुधार्तः फणी,
तंच क्रौञ्चपतेः शिखीच गिरिजासिंहोऽपि नागाननम्।
गौरी जह्नुसुतामसूयति कलानाथं कपालाननो,
निर्विण्णः स पपौ कुटुम्बकलहादीशोऽपि हालाहलम्॥

गणपति के वाहन मूषक को क्षुधातुर वासुकि नाग निगलना

चाहता है, और जैसे ही वह मूषक पर टूटता है वैसे ही स्वामी कार्तिकेय का वाहन मयूर सर्प पर झपटता है। इधर पार्वती का वाहन सिंह भी गजानन पर दृष्टि लगाये रहता है। इधर गौरी गंगा से डाह करती है और उधर कपाल वाला मस्तक चन्द्रमा पर ईर्ष्या करता है। यों प्रतिदिन के कुटुम्ब के कलह से तंग आकर भगवान् शिव ने जहर पीलिया।

शिव के विषय में हजारों सूक्तियाँ हैं, विस्तार भय से उन्हें न लिख प्रकरण समाप्त करते हैं:—

अहौ वाहारे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा,
मणौ वा लोष्ठे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा।
तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यान्तु दिवसोः,
सदा पुण्येऽरण्ये शिव शिव शिवेति प्रलपतः॥

सर्प अथवा माला में, बलवान् शत्रु या मित्र में, मणि अथवा मिट्टीके ढेले में, फूलों की शय्या या पत्थर में, एवं तृण अथवा तरुणी में समान भाव रखते हुए मेरे दिन किसी पुनीत कानन में शिव शिव रटते हुए बीतें।

हिन्दी साहित्य में शिव

कुन्द इन्दु सम देह, उमारमन, करुना अयन।
जाहि दीन पर नेह, करहु कृपा मरदन मयन ॥

यह सोरठा वैष्णव शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास का है। इसमें शिव वन्दना के साथ कविने सौन्दर्य, शुद्धप्रेम, भक्तवात्सल्य और सामर्थ्य का एक साथ वर्णन करते हुए सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण का कैसा उत्तम मेल किया है। इसी महा कवि का शङ्कर की दानशीलता पर व्याज स्तुति में कैसा सुन्दर चित्रण है।

बावरो रावरो नाह भवानी
दानि बडो दिन देत दये बिनु' वेद बडाई भानी ॥
निज घर की वर बात बिलोकहु, हौ तुम परम सयानी।
सिव को दई संपदा देखत, श्री सारदा सिहानी ॥
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नहीं निसानी।
तिन रङ्कनकों नाक संवारत, हौ आयो नक बानी ॥
दुख दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिये औरहिं भीख भली मैं जानी ॥
प्रेम प्रशंसा विनय व्यंगजुत सुनि विधि की वर बानी ॥
'तुलसी' मुदित महेस मनहिँ मन, जगत मातु मुसकानी।

शँकर की उदारता देख ब्रह्मा घबरा गया। और सोचने लगा कि शङ्कर को समझाना बुझाना व्यर्थ है। संभव है पार्वती

के कान में यह शिकायत पड़ने पर वह शिव के अपव्यय को रोक सके। यह निश्चय कर ब्रह्मा हाथ जोड पार्वती से कहने लगा—देवी! आपके पति, जान पडता है, पागल हो गये हैं। रात दिन दान ही किया करते हैं। उन्होने वेद की मर्यादा तोड दी है। चाहे जिसे जो दे देते हैं। यह अनधिकार दान देख लक्ष्मी और सरस्वती आपस में डाह करने लगी हैं। जिनके प्रारब्धमें मैंने सुख का नाम तक नहीं लिखा था उन्हें आपके पति देवने महान् समृद्धि-शाली बना दिया है। इन्द्र भी आज उन जन्म रंकों की सेवा करने जारहा है। मेरा तो नाकों दम आगया है। दुःख दीनता और याचकता इनके दुःख से दुःखी हैं। अब मुझसे सृष्टि का भार न सँभल सकेगा। मेरा अधिकार किसी कार्य कुशल को सौंप दीजिये और मेरा त्याग पत्र स्वीकार कीजिये। मैं भीख मांगकर ही पेट पाल लूंगा। ब्रह्मा की यह व्यंग भरी विनति सुन महादेव मन ही मन बड़े प्रसन्न हुए। पार्वती भी मुसकराई। क्या ही उत्तम उक्ति वैचित्र्य है।

महाकवि पद्माकर तो भोले बाबा के औढरदानीपन पर रीझ गये हैं। बात भी ठीक है, एक धतूरे के फूल के बदले में अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, चारों मिल जाते हैं।

देव नर किन्नर अनेक गुन गावत पै,
पावत न पार जा अनन्त गुन पूरे को।
कहे 'पदमाकर' सुगाल के बजावत ही,
काज करिदेत जन जाचत जरूरे को॥

चन्द्र की छटान जुत पन्नग फटान जुत,
मुकुट विराजै जटा जूटन जूरे को।
देखो त्रिपुरारी की उदारता अपार जहँ,
पैये फल चार एक फूल दे धतूरे को॥

पद्माकर के साथ सुकवि सेनापति भी बेलपत्र से ही आशुतोष शिव को प्रसन्न होते देखते हैं।

सोहत उतंग जाको उत्तमङ्ग ससिसङ्ग,
गंगगौरि अरधंग काम प्रतिकूल है।
देवन को मूल 'सेनापति' अनुकूल करि,
चाम सारदूल को सदा कर त्रिशूल है॥
कहाँ भटकत अटकत क्यों न तामें मन,
जातें आठ सिद्धि नव निद्धि तू लहै।
लेत ही चढाइबे को जाके एक बेल पात,
चढ़त अगाऊ हाथ चारि फल फूल हैं॥

रसखानि कहते हैं कि इनके स्वरूप का ध्यान करते ही सारे दुःख द्वन्द्व मिट जाते हैं। आपके भक्त आपके साथ मन माना व्यवहार करते हैं। कोई गाल बजाता है तो कोई कहता है 'बम शङ्कर की' सुना है गाल बजाने वालों का, गप्पे मारने वालों का, कहीं भी आदर नहीं होता, पर यहाँ तो, गाल बजाने वालों ही की पूछ है। उलटी गंगा बही है तो यहीं। आप स्वयं भी गाल बजाया करते हैं।

यह देखु धतूरे को पात चबात औ गात में धूर लगावतु है।
चहुँ ओर जटा अटकैं लटकैं फन सेषफनी फहरावतु है ॥
'रस खानि' जोई चितवै चितदेतिहिं को दुखःद्वन्द्व भजावतु है।
गज खाल कपाल की माल विसाल सो गाल बजावत आवतु है॥

आचार्य भिखारीदास आपकी कड़ी आलोचना करते हुए क्या ही उत्तम ताने कसते हैं कि आपने बुरी वस्तुओं को अपनाया है तो उत्तम वस्तुओं का क्या बिगड़ गया है।

आक औ कनक पात तुम जो चबात हो तो,
षटरस व्यंजन के हूँ भाँति लटिगो।
भूषन वसन कीनो व्याल गज खाल को तो,
साल सुवरन को न पैन्हिवो उलटिगो ॥
'दास' के दयालु हो, सुरीति ही उचित तुम्हें,
लीनो जो कुरीति तो तिहारो ठाट ठटिगो।
ह्वै के जगदीश कीनो वाहन वृषभ को तो,
कहा शिव साहिब गयन्दनि को घटिगो ॥

गंगा के अनन्य भक्त पद्माकरने भी आपको खूब खरी सुनायी है—

लोचन असम अंग भसम चिता की लाइ,
तीनों लोक नायक सों कैसे कै ठहरतो।
कहै 'पद्माकर' विलोकि इमि ढंग जाके,
वेदहु पुरान गान, कैसे अनुसरतो ॥

बांधे जटाजूट बैठि परबत कूटि मांहिं,
महाकाल कूट कहौ कैसे कै ठहरतो ।
पीवै नित भंग रहै प्रेतन के संगे ऐसे,
पूछतो को नंगै, जो न गंगे सीसधरतो ॥

हास्यरस में कविता करने वाला शायद ही कोई ऐसा कवि होगा जिसने शिवविषयक कविता न लिखी हो । देखिये महाकवि पद्माकर भोलेबाबा के विवाद का कैसा सुन्दर चित्र खींचते हैं:—

हँसि हँसि भजै देखि दूलह दिगम्बर कौं,
पाहुनी जे आवें हिमाचल के उछाह में ।
कहै 'पद्माकर' सुकाहुसों कहै को कहा,
जोई जहाँ देखै हँसै सोई तहाँ राह में ॥
मगन भयेई हँसै नगन महेश ठाढे,
और हँसेउ हँसै हँसी के उमाह में ॥
सीस पर गङ्गा हँसै भुजनि भुजंगा हँसै,
हास ही को दंगा भयो नंगा के विवाह में ॥

उक्ति वैचित्र्य से आशुतोष को भिक्षुक देख कवि 'वचनेश' के मांगने का ढंग देखिये—

मांगे कहा अम्बरतैं आपही दिगम्बर हैं,
मांगे कहा भूषण कपाल व्यालधारी तैं ।
मांगै कहा वाहन तिहारे एक बूढो बैल,
मांगै कहा पाक विष आक के अहारी तै ॥

मांगै कहा धाम है मसान को प्रवासी देव,
मांगै कहा तोसों धन विदित भिखारी तैं ।
'वचनेश' नाथ हाथ जोरि यही मांगै हम,
हर है तो हर हर विपत्ति हमारी तैं ॥

शङ्कर के कठोर शासन का नमूना 'बन्धु' कवि हमारे सम्मुख उपस्थित करते हैं। देखिये—

सिंह न बैल सों बोले कछू न भुजंगम मूषक ओर निहारे ।
मोर रहे बनि मित्र भुजङ्ग को प्रेत पिशाच है दीनताधारे ॥
देख्यौ दिगम्बर के घर में हरि हेकडहू मिले दांत निकारे ।
और की 'बन्धु' है का गति भंगड नंगासे हैं भगवानहू हारे ॥

देखिये कविता कामिनीकान्त नाथूराम (शङ्कर) शङ्कर से पार्वती के मुख से कैसा सुन्दर विनोद करा रहे हैं।

इन भूत परेत पिशाचन के डरसे निशिवासर ही डरती ।
दधि दूध न अन्नहु ढूँढे मिले नित भाँग भकोसतही मरती ॥
नहीं अम्बर अङ्ग दिगम्बर के तन मांहि भभूत मल्यो करती ।
हँसि पारवती कहे शङ्कर सों हम ना वरतीं तुम्हें को वरती ॥

देखिये लक्ष्मी और पार्वती का सम्वाद कैसी चित्त में प्रसन्नता उत्पन्न करता है:—

भिक्षुक तिहारो कहाँ ? वलि मखशाला जहाँ,
सर्पन को संगी ? कहूँ ह्वै हैं क्षीर सागर में ।

एरी बहुरंगी ? बैल वालो कहाँ नाचत है ?
कीन्हे तिरभंगी कहूँ ह्वै है ग्वाल बालन में ॥
चाँवर चबैया कहाँ ह्वै है सुदामा पास,
विष को अहारी कहाँ ? पूतना के घर में ।
सिन्धुसुता आन मिली तर्क सों वितर्क करी,
गिरिजा मुसकात जात झारी लिये कर में ॥

अब थोड़ासा भूतनाथ के यहाँ का कलह देखिये। भूखा सांप गणेशवाहन मूषक को खा जाना चाहता है। कार्तिकेय का वाहन मोर साँप पर लपकता है। इधर पार्वती का वाहन सिंह बैल पर टूटा पड़ता है। बेचारा बैल डर के मारे आप ही आप प्राण छोड़े देता है। कोतवाल भैरव का कुत्ता अलग ही भों भों कर रहा है।

बार बार बैल को निपट ऊँचो नाद सुनि,
हुँकरत बाघ बिरुझानों रस रेला में ।
'भूधर' भनत ताकी बास पाइ सोर करि,
, कुत्ता कोतवाल को बगानो बगमेला में ॥
फुँकरत मूषक कों दूषक भुजंग तासों,
जंग करिबे कों झुक्यो मोर हर हेला में ।
आपस में पारषद करत पुकारि कछु,
रारिसी मची है त्रिपुरारि के तबेला में ॥

अब हम अन्त में भिखारीदास की प्रार्थना उद्धृत कर निबन्ध समाप्त करते हैं:—

भाल में जाके कलानिधि है, वह साहिब ताप हमारो हरैगो ।
अङ्ग में जाके विभूति भरी, वह भौन में संपति भूरि भरैगो ॥
घातक है जो मनोभवको, मनपातक वाही के जारे जरैगो ।
'दास' जो सीसपै गंगधरै रहैं, ताकी कृपा कहु को न तरैगो ॥

हारीत

बप्पाभिधो नरपती रघुवंशकेतु—
लेभे स यस्य कृपयैव मिवारराज्यम् ।
तं शम्भुपूजनरतं नियतेन्द्रियाश्वं,
हारीतराशिमृषिपुङ्गवमानतोऽस्मि ॥

शिवस्वरूप भगवान् एकलिङ्ग के विषय में शास्त्र और इतिहासप्रतिपादित सभी आवश्यक बातों का उल्लेख किया जा चुका है।

प्रायः देखा जाता है कि सिद्ध पीठों की प्रसिद्धि में महापुरुषों का अनुग्रह कारण होता है। उसी प्रकार श्री एकलिङ्गजी के सिद्ध-पीठ की प्रसिद्धि में भी हम महर्षि हारीत के पूर्ण आभारी हैं। इसलिये हमें उनका यहां परिचय देना अत्यावश्यक प्रतीत होता है।

योगिराज हारीतराशि इस स्थान के आदि आचार्य थे। इनके समय-निर्णय में ऐसे कोई स्वतंत्र प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं, जिनसे यह सिद्ध किया जासके कि अमुक समय में महर्षि हारीत विद्यमान थे। केवल मेवाड़ राज्य के संस्थापक बापा के गुरु होने के कारण इनके समय से ही समयनिर्णय करना युक्ति संगत प्रतीत होता है।

बापा के जन्म समय के विषय में बहुत मतभेद होने पर भी अब ऐतिहासिकों ने एकलिङ्गमहात्म्य के २० वें अध्याय के

योग की सभी सिद्धियों में सिद्धहस्त थे। उनमें इस प्रकार वर्णन है। बापा अपने गुरु की गायें चराने जंगल में जाया करते थे। एक गाय का प्रतिदिन किसी के दूध निकाल लेने का संदेह कर गुरु ने बापा को सावधान रहने का आदेश दिया। तदनुसार वे उस गाय का पीछा करते हुए क्या देखते हैं कि गाय वांसों के कुञ्ज में एक शिवलिङ्ग पर अपने आप दूध डाल रही है। पास में ही एक साधु तपस्या कर रहे थे। यह उन्हींका चमत्कार समझ उनके पास जा प्रणाम किया और प्रतिदिन उनकी सेवा करने लगे। समय पा वापा की सेवा सफल हुई और गुरु ने दूसरे दिन शीघ्र प्रातः काल आने की आज्ञा दी। वापा कुछ समय अतिक्रमण कर तपस्वी के आश्रम में पहुंचे। उस समय तपस्वी आकाशमार्ग में विमान में वैठ जा रहे थे। वापा को देख तपस्वी ने हाथ बढ़ाया और वापा को विमान तक लम्बा बना दिया। तदनन्तर योगिराजने अपने मुख का ताम्बूल उन्हें देना चाहा। बापा घृणावश उच्छिष्ट पान मुख में न ले सके, अतः वह पैर के अंगूठे पर गिरा। हारीत ने यह देख कहा कि यह ताम्बूल तू मुख में ले लेता तो अच्छा होता, खैर, पैर पर गिरने के कारण तेरे वंशजों का पैर मेवाड़ से नहीं हटेगा अर्थात् मेवाड़ पर राज्य बना रहेगा।

हारीतराशिरभवद्गुरुरस्य साक्षादाराध्य शंभुमभजत्परमंमुदंयः।
आशास्यतेशकृपया मुनिना च तेन वंशेस्य निर्जितविरुद्धमधीश्वरत्वम्॥
हारीतराशिवचनाद्धरमिन्दुमौलेरासाद्य स द्विजवरो नृपतिर्बभूव॥

श्री एकलिंगजी के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति पद्य १५-१६

चाहे इतिहास एकलिङ्गमहात्म्य व ख्यात में वर्णित हारीत की इस प्रकार योग की चमत्कारिक वातों पर विश्वास न भी करे तो भी एक भक्तहृदय के लिये ये वातें असम्भव नहीं, अपितु योगशास्त्रसम्मत हैं।

योग (मेस्मेरिजम) के द्वारा जव आज भी हम प्रत्यक्ष में असाध्य रोगों की चिकित्सा में वहुतों को सफल होते देखते हैं तव पूर्ण अभ्यासी की योग की अलौकिक शक्तियों में अविश्वास करने का कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता। यह सव कोई जानते हैं कि गुरु पदार्थ आकाश में वीच में नहीं ठहर सकता, उसको पृथ्वी अपनी ओर खींचती है और वह नीचे गिर पड़ता है। किन्तु योगविद्या में यह चमत्कार है कि वह विज्ञान के दायरे से वाहिर भी काम कर सकती है। योग के साधारण अभ्यासी अपने उदरपोषण के लिये खेल करते हुए देखे जाते हैं कि टेवुल अथवा किसी वालक को जो गुरु पदार्थ है अपने मेस्मेरिजम (योग) द्वारा वीच में कुछ समय के लिये टिका देते हैं। तव सांसारिक वस्तुओं में निरीह जीवन को परमानन्द की प्राप्ति में लगाने वाले हारीत जैसे महर्षि योगद्वारा ऐसे अलौकिक कार्य (बापा को विमान तक लम्वा बना देना, मेवाड़ का राज्य देना आदि;) करें तो इसमें सन्देह करने का अवकाश नहीं रह जाता।

हम प्राच्य और पाश्चात्य सभी सम्प्रदायों के ग्रन्थों में इस प्रकार कुछ न कुछ चमत्कारी वातों का समावेश देखते हैं, जिसको

मानने के लिये न मालूम क्यों मानवहृदय प्रमाणाभाव होने पर भी वाध्य हो जाता है।

हम हारीत को पुरातन ग्रन्थ और प्रशस्तियों के आधार पर योग की आठों सिद्धियों पर प्रभुत्व रखने वाले एक पूर्ण योगी कहें तो अत्युक्ति न होगी ।

स्थान—

बापा ने चितौड़ का राज्य प्राप्त किया और जीवन में उत्तरोत्तर उन्नति देख एकलिङ्ग के अनन्यभक्त हारीतराशि के अनुग्रह की विस्मृति उचित न देख शिष्यपरम्परा स्थिर रखने के लिये कृतज्ञता वश स्थान नियत किया। इस स्थान का व्यय राज्य कोप से दिलाने का प्रबन्ध किया जो अब तक सुचारु रूप से चल रहा है।

इसी स्थान पर वंश परम्परा में नरहरि हुए जिन्होंने १५६२ में गुरुस्थान (मठ) का विस्तार किया यह गोस्वामीजी महाराज के मठ पर एक ताक में लगे हुए शिलालेख के आधार पर पूर्ण प्रमाणित है। इससे यह भी सिद्ध हो ही जाता है कि पहिले छोटा मठ आचार्यों के लिये अवश्य निर्मित था। जिसका समय समय पर राज्य की ओर से जीर्णोद्धार होता रहा होगा। इस प्रकार प्राचीन मठ का निर्माणकाल भी ऐतिहासिकों के अनुमान से वापा के समय विक्रम संवत् ७६१ से ८१० तदनुसार ईस्वी सन् ७३४ से ७५३ तक स्थिर होता है।

हारीतवंश—

जब मेवाड़ राज्य वंश का प्राचीन इतिहास भी कथञ्चित् प्राप्त प्राचीन सामग्री के अतिरिक्त विशेष अनुमान व जनश्रुति के आधार पर बना है, और पूर्ण समझे जाने वाले आज के इतिहास में ही ऐतिहासिकों में बहुत बड़ा मत भेद है तो फिर ऐसे छोटे राज्याश्रित समय समय पर यवनों के उपद्रवों से पीडित स्थान का शृङ्खलाबद्ध इतिहास पूर्ण रूपसे प्राप्त हो जाय यह असंभव नहीं तथापि कठिन अवश्य है। इसके लिये उदयपुर पुरातत्व विभाग के अध्यक्ष पं० शोभालालजी शास्त्री ने मठाधिपति कैलासानंदजी के समय में बहुतेरी शोध की किन्तु प्राचीन संग्रह न होने से सफलता प्राप्त नहीं हुई।

एकलिङ्ग के परमभक्त मूलपुरुष हारीत के बाद क्रमशः शिष्य परम्परा का पता चलना कठिन है, जिसके विषय में आगे लिखा गया है। केवल वि० सं० १०२८ की नाथों के मन्दिर की प्रशस्ति में हारीत की शिष्यपरम्परा में वेदाङ्गमुनि सुपूजित रासि, सद्योराशि तथा विनिश्चित रासि का उल्लेख मिलता है। तदनन्तर संवत् १२३५ की चित्तौड़ नौ कोठा की प्रशस्ति में "श्री एकलिङ्गशिव सेवनतत्परश्रीहारीतराशिवंशसम्भूतमहेश्वर—राशिस्तच्छिष्य श्री शिवराशि" लिखा होने के कारण उस समय हारीत की शिष्य परम्परा में महेश्वरराशि और उनके शिष्य शिवराशि का होना पूर्ण रूप से सिद्ध है।

एक लिङ्गजी के पास चीर वा ग्राम में एक मन्दिर की प्रशस्ति जो सं० १३३० की है उसमें "पाशुपति तपस्वीपतिः श्री शिवराशिः शशिगुणराशिः" का भी उल्लेख है। इसी वंश परम्परा में संवत् १५६२ में नरहरि हुए जिनके मठ विस्तार के विषय में कहा जा चुका है।

तदनन्तर स्थान धारियों में कुछ दोष आजाने के कारण महाराणा जगत् सिंहजी ने वि० संवत् १६८७ में*सन्यासी रामानन्दजी को काशी से बुलाकर हारीतराशि के इस पुनीत आसन पर आरूढ़ कर भगवान् एकलिङ्ग की सेवा का निरीक्षणकार्य सौंप गुरु बनाया। तब से सन्यासी ही इस स्थान पर होते आ रहे हैं और गोस्वामी कहे जाते हैं। स्थान पाशुपत सम्प्रदाय का होने के कारण गोस्वामियों की वेशभूषा में भी मुकुट धारण, गाती बन्धन आदि व्यवहार में पाये जाते हैं। इनकी अध्यक्षता में तीन चार ब्रह्मचारी रहते हैं, वे यहां का पूजन कार्य करते हैं।

मत व सम्प्रदाय—

गोस्वामीजी महाराज जगत्प्रसिद्ध महान् दार्शनिक स्वामी शङ्कराचार्य द्वारा प्रतिपादित अद्वैतमतावलम्वी, (जीव ब्रह्म की एकता मानने वाले) पश्चिमीय शारदा मठानुयायी व उपासना क्षेत्र में शैव हैं।

---

* नर्मदानन्दजी महाराज की छत्री के शिलालेख के आधार पर।

हारीत वंश की वर्तमान विभूति



गोस्वामीजी महाराज श्री सवाई राघवानन्दजी
कैलासपुरी

❀ इनके सम्प्रदाय का नाम कीटवार है। अगस्त्य गोत्र है। सामवेद है। तीर्थ और आश्रम पद हैं। द्वारिका क्षेत्र है। वासुदेव देवता हैं। सिद्धेश्वर नाम के महादेव हैं। भद्रकाली † कुलदेवी, भैरव बटुक, कृष्णपिङ्गाक्ष गणेश, गङ्गा और गोमती तीर्थ विश्वरूप आचार्य और हस्तामलक ब्रह्मचारी हैं।

आचार्य का समय—

सम्प्रदाय के मूल आचार्य विश्वरूप‡ हैं, जो अद्वैतमत के प्रव-

❀ तद्वर्षे पश्चिमदिशि द्वारिका क्षेत्र उच्यते।
संप्रोक्तः पश्चिमाम्नायः शारदासंज्ञकोमठः॥
श्री गंगा गोमती तीर्थं कृष्णपिंगाक्षसंज्ञकः।
गणेशस्तत्र विज्ञेयो वासुदेवस्तु देवता॥
सिद्धेश्वरो महादेवः श्रीदेवी भद्रकालिका।
बटुको भैरवः प्रोक्तः आचार्यो यतिसत्तमः॥
हस्तामलकसंज्ञस्तु ब्रह्मचारीस्वरूपकः।
कीटवारः सम्प्रदायो गोत्रं चागस्तिसंज्ञकम्॥
तीर्थाश्रमपदाभ्यां वा उपयोगपटो भवेत्।
सामवेदप्रमुखतो वेदादिपठनं भवेत्॥
कीटः पातकमित्युक्तं वार्यते येन जीविनाम्।
सम्प्रदायो यतीनां च कीटवारः स उच्यते।

एकलिङ्गमहात्म्य, मठाम्नाय और हस्तलिखित सन्यास नित्यकर्म सम्प्रदाय पद्धति।

†. भद्रकालीति देवी स्यादाचार्यो विश्वरूपकः। मठाम्नाय।

‡. ततश्च योगीश्वर वि[illegible]रास्त्रयाथर्वणवेदगर्भा।
मुनीन्द्रहारीत इतः [illegible] सहतामुपेतः॥
नर्मदानन्दजी म०. [illegible] हुई प्रशस्ति।

त्रैक शंकराचार्य के समकालीन थे।

शङ्कर के विषय में पं० वासुदेव शर्मा ने कलि गताब्द ३८८६ तदनुसार विक्रम् संवत् ८४५ माना है। ऐतिहासिक तैलङ्गजी इनका जन्म ईसा की ६ ठी शताब्दी मानते हैं। भाण्डारकर ६८० ईस्वी के लगभग शङ्कर का जन्म समय नियत करते हैं। प्रोफेसर मेक्समूलर तथा मेकडोनल के मत से आपका जन्म समय ७८८ ईसवी स्थिर होता है। इसी पक्ष में प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानों का बहुमत होने से शङ्कराचार्य का जन्म समय ७८८ ईस्वी व निर्वाण संवत ८२० ईस्वी स्थिर होता है।तदनुसार विश्वरूपाचार्य का समय भी इनके शिष्य होने के कारण यही समय ८ वीं शताब्दी मानना युक्तिसंगत प्रतीत होता है। आचार्य किस देश व स्थान में उत्पन्न हुए यह प्रायः अविदित ही है।

शङ्कर का सिद्धान्त ब्रह्म जीव की एकता प्रतिपादन करने के कारण अद्वैत सिद्धान्त कहलाता है। आज जो कुछ विश्व में हिन्दुस्तान के लिये प्रतिष्ठा है वह शङ्कर के Monism (अद्वैत) सिद्धान्त के अधार पर ही है। वास्तव में पाश्चात्य जगत् भारतीय तत्वज्ञान से शङ्करसिद्धान्त को ही जानता है। यह सिद्धान्त इतना सच्चा और प्रामाणिक है कि बड़े बड़े भारतीय दार्शनिकोंने व प्राचीन ग्रीस के दार्शनिक प्लेटो से लेकर अर्वाचीन तत्व वेत्ताओं में स्वेडनवर्ग, हेगल, फिस्ते, थामसहिल ग्रीन प्रो० पाल, डायसन आदि को अद्वैत की ही सूक्ष्म युक्तिसङ्गत प्रतीत हुई है।

मुसलमानों में भी ज्ञानकाण्ड का विचार करने वाले सूफियों का मत भी अद्वैत ही है।

सिद्धान्त—

शङ्कराचार्य के मूल सिद्धान्त ही सम्प्रदाय के मुख्य सिद्धान्त हैं।

(१) जीव ब्रह्म की एकता।

(२) ब्रह्म अनन्त, सर्वव्यापक, नित्यशुद्ध और आनन्द स्वरूप।

(३) ब्रह्म की सत्यता जगत् का मिथ्यात्व।

(४) सृष्टि की उत्पत्ति में एक ही ब्रह्म का बहुत रूपों में व्यक्त होना।

---

(१) अहं ब्रह्मास्मि, अयमात्माब्रह्म, सर्वंखल्विदंब्रह्म, आत्मैवेदं सर्वम् (छान्दोग्य०) ब्रह्मैवेदं विश्वम् (मुण्डकोपनिषत्) इदं सर्वं य दयमात्मा (बृहदारण्यक) आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् (ऐतरेय) एकोदेवः सर्वभूतेषु गूढः (श्वेताश्वतर) सदेव सौम्येदमग्र आसीदे कमेवाद्वितीयम् (छान्दोग्य० ६-२-१)

(२) सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म (तैत्तिरीय०)। विज्ञानमानन्दं ब्रह्म (बृहदारण्यक)।

(३) ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या।

(४) बहुस्यां प्रजायेय। प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते। (यजुर्वेद पुरुषसूक्त)

(५) मुक्ति निरतिशय आनन्द स्वरूप और ज्ञान ही उसमें मुख्य साधन

पालनीय नियम—

(क) शास्त्र में प्रतिपादित लक्षणयुक्त दण्ड रखना।

(ख) कौपीन पादुका, वस्त्र की जूती पहनना, व कापायवस्त्र धारण।

(ग) ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ऋजुता, वेदान्तश्रवण, संध्यादण्डतर्पण, स्नान, शौच, जप, ध्यान देवार्चन स्वाध्याय आदि।

(घ) पुराणश्रवणादि।

(ङ) मुण्डन चरित्रशुद्धि भोजनसंयम आदि।

(च) नृत्य गान आदि में भाग न लेना।

---

(५) निरतिशयानन्दस्वरूपा मुक्तिः। ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः। इत्यादि उपनिषद् वाक्य।

(क) धारयेद्वैणवं दण्डं न स्थूलं न कृशं तथा। तस्य चाग्रे च मूले च ग्रन्थि त्यक्त्वातु धारयेत्। द्विचत्वारि षडष्टौवाह्यङ्गुलानि समाहितः। नन्यूनं नातिरिक्तं च द्विगुणं मूलतोग्रके। (अत्रिस्मृतिः।) दण्डं तु वैणवं सौम्यं सत्वचं समपर्वकम्। पुण्यस्थाने समुत्पन्नं नाना कल्माष-शोभितम् (भविष्यपुराण)।

(ख) कौपीनाच्छादनं वासः कन्थां शीतनिवारिणीम्। पादुके चापि (अत्रिस्मृतिः) काषायं ब्राह्मणस्योक्तं नान्यवर्णस्य कस्यचित्।

केन्द्रस्थान—

आद्य शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित मठों में प्रधान पश्चिमीय शारदामठ इस सम्प्रदाय का केन्द्र स्थान है। इस स्थान के आचार्य को सिन्धु सौवीर सौराष्ट्र, महाराष्ट्रादि पश्चिमीय देशों पर धार्मिक प्रभुत्व रखने का पूर्ण अधिकार (१) है।

मोक्षाश्रमे सदा प्रोक्तं धातुरक्तंतुयोगिनाम् (अत्रि स्मृतिः)। उभान हौ गृहीतव्ये कार्पासमयमप्युत (यतिधर्मसमुच्चय)।

(ग) भिक्षाटनं, जपोध्यानं स्नानं शौचं सुरार्चनम्। कर्तव्यानि षडेतानि यतिना नृपदण्डवत्। ब्रह्मचर्यमहिंसा च सत्यमस्तेयमार्जवम्। वेदान्तश्रवणं ध्यानं भिक्षोः कर्माणि नित्यशः। यतिधर्म संग्रह।

(घ) इतिहासपुराणाभ्यां पष्ठसप्तमकौ नयेत्।

पुराणश्रवणे भक्तिः सर्वस्यापि प्रवर्तते। (दक्षः) भक्त्याविच्छिन्नया मुक्तिस्तस्मात्पौराणमभ्यसेत्।

तदभ्यासात्परंब्रह्मभावमापद्यते मुनिः। यतिधर्मसंग्रहः।

(ङ) सम्भाषणं सह स्त्रीभिरालापप्रेक्षणे तथा। नृत्यं गानं सभासेवा परिवादांश्चवर्जयेत्। 'विष्णुपुराण'।

(१) परस्पर विभागेतु प्रवेशो न कदाचन। परस्परेण कर्तव्या आचार्येण व्यवस्थितिः। मर्यादाया विनाशेन लुप्येरन् नियमाः शुभाः। कलहाङ्गारसम्पत्तिरतस्तां परिवर्जयेत्। (मठेतिवृत्त) सिन्धु सौवीर सौराष्ट्र महाराष्ट्रास्तथान्तराः। देशा पश्चिमदिक्स्था ये, शारदापीठ सात्कृताः। मठेतिवृत्त पृष्ठ २ शङ्कराचार्य चूर्णिका।

इस स्थान के आचार्य की दूसरे मठों से प्रधानता होने के कारण यहां के आचार्यों को यह अधिकार प्राप्त है कि वे भिन्न भिन्न स्थानों में पर्यटन करते हुए लोगों में धर्म का उपदेश करे और उन्हें धर्मकी ओर प्रवृत्त करें।

इस सम्प्रदाय के मूल स्थान के अतिरिक्त अवान्तर स्थान का पता पूर्ण रूप से अज्ञात तथा धार्मिक ग्रन्थो में अप्रतिपादित है

माननीय मुख्य ग्रन्थ—

(१) वेद, एकादशोपनिषद्भाष्य के अतिरिक्त शङ्कराचार्यकृत ब्रह्मसूत्र भाष्य पूर्ण रूप से मान्य है।

(२) गीताभाष्य, सनत्सुजातीय भाष्य, हस्तामलकभाष्य, ललित त्रिशती भाष्य आदि शङ्करकृत पूर्ण प्रामाणिक समझेजाते हैं

(३) सिद्धान्त बिन्दु:—यह श्री शंकराचार्य कृत 'दशश्लोकी' की व्याख्या है। मधुसूदन सरस्वती ने उसीका युक्ति द्वारा विस्तार किया है।

(४) अद्वैतसिद्धि-यह अद्वैत सिद्धान्त का अत्यन्त उच्च कोटिका ग्रन्थ है। इसमें चार परिच्छेद हैं। ब्रह्मानन्द सरस्वती ने इसके ऊपर लघुचन्द्रिका नामकी व्याख्या लिखी है। यह ग्रन्थ अद्वैत सम्प्रदाय का अमूल्य रत्न है।

५ अद्वैत रत्नलक्षण-इसमें द्वैतवाद का खण्डन करते हुए अद्वैत वाद की स्थापना की है।

६ वेदान्त कल्पलतिका-यह भी वेदान्त ग्रन्थ है।

७ भेदधिक्कार-इसमें भेदवादका खण्डन है।

८ वैदिकसिद्धान्तसंग्रह-इसमें ब्रह्मा विष्णु और शिव की एकता प्रतिपादित है।

९ इनके अतिरिक्त अपरोक्षानुभूति व्यासतात्पर्यनिर्णय आदि ग्रन्थ हैं।

स्थानधारियोंकी सूची—

यह पहले लिखा जाचुका है कि इस स्थान के आचार्यों की समय सहित क्रमवद्ध सूची दुष्प्राप्य है। प्राचीन शिलालेखों में उल्लिखित स्थान धारियों का दिग्दर्शन भी कराया गया है, किन्तु वह भी पूर्ण संग्रह न होने से विशेष सन्तोषप्रद नहीं। अब हम नर्मदानन्दजी महाराज के समाधि मन्दिर के सम्वत् १९४७ के शिलालेख के आधार पर हारीत वंश की संक्षिप्त सूची लिखते हैं। इसमें यह परम्परा सूची शारदा मठ के आचार्य से मिलाई गई है।

आद्य शङ्कराचार्य के विश्वरूपाचार्य, अङ्गिरा, आथर्वणाचार्य, हारीतराशि, धर्माचार्य, सायण, सन्तोषाचार्य, मार्कण्डेय, पुष्कर, रत्नाचार्य, परशुराम, प्रेमर्षि, सिद्धेश, त्रिमौलि, पुष्कर, सत्याचार्य, पद्मपाद, विवरणाचार्य, सन्तोषाचार्य, वेदाङ्गाचार्य, आप जैन और बौद्धों को विवाद में जीतने वाले थे। * त्रिलोचन, महेश्वर, तरङ्ग, सोमेश, सुरेश्वराचार्य, त्रिपुरेश्वर, धर्माचार्य, कर्दमाचार्य, सिद्धेश, केदार, शिवकण्ठ, नागाचार्य, विश्वेश, नारायण, गर्गाचार्य, नृहरिः,

---

* नाथों के मन्दिर की प्रशस्ति के आधार पर।

शुक्ला त्रयोदशी के दिन शङ्करानन्दजी हुए। आपका जन्म भट्टमेवाड़ा ब्राह्मण जाति में हुआ था। आप बड़े स्पष्ट वक्ता थे। तत्पश्चात् सम्वत् १६८६ में वैशाख कृष्णा पंचमी के दिन लक्ष्मणानन्दजी महाराज हुए। आपने जन्म से औदीच्य जाति को कृतार्थ किया था। आप सरल प्रकृति थे। आपने सम्वत् १६६४ पौष शुक्ला १३ मकर संक्रान्ति पर तुलादान कर ताम्रपात्र ब्राह्मणों को दान में दिये। तदनन्तर सम्वत् १६६५ वैशाख शुल्का त्रयोदशी को मैं (वर्तमान गोस्वामी राघवानन्द) इस स्थान पर हुआ। मैंने सबसे पहले गुरुऋण से मुक्ति आवश्यक समझ गुरु महाराज कैलासानन्दजी, शङ्करानन्दजी और लक्ष्मणानन्दजी महाराज की छत्रियें बनवाय उनमें शिवलिङ्गों की प्रतिष्ठा की। इस कार्य में १२४६) रुपयों का व्यय हुआ। शास्त्रों में शिव और विष्णु में अभेद प्रतिपादित देख नाथद्वारे गोस्वामीजी महाराज के यज्ञोपवीत में सम्मिलित हो भगवान् श्री नाथजी के दर्शन किये। यह कार्य स्थान धारियों का चिरकाल से रुका हुआ था। हारीत वंशज गुरुओं का भगवान् श्रीनाथजी के दण्ड स्पर्शकर दर्शन करने का आग्रह था और वल्लभ कुल गोस्वामियों का रुद्राक्षधारण व दण्डग्रहण कर भगवान् श्रीनाथ के मन्दिर में प्रविष्ट हो सन्यासियों को दर्शन नहीं करने देनेका आग्रह था। इस पर शास्त्रों के सिद्धान्तानुसार परामर्श हुआ। अन्त में रुद्राक्षमालाधारण व दण्डग्रहण कर मन्दिर में प्रवेश हो दर्शन न होने के निश्चय को उन्हें उठा देना पड़ा। और हमने भी

दण्ड व रुद्राक्ष माला ग्रहण कर निज मन्दिर में प्रविष्ट हो दर्शन करने की शर्त पर दर्शननिषेधमूलक भगवान् श्रीनाथजी के दण्ड स्पर्श करने का आग्रह त्याग दिया।

मैंने भगवान् एकलिङ्ग को लक्ष्य कर शिव पर शास्त्रीय विचार और स्थान के मूल पुरुष के परिचय आदि के लिये ग्रन्थ की आवश्यकता समझ पूर्ति करने का प्रयास किया है।

मेरा जन्म औदीच्यान्तर्गत आमेटा ब्राह्मणजाति के स्वनाम-धन्य वत्सगोत्रीय पिता रत्नेश्वर शर्म्मा व माता कृष्णादेवी से सम्वत् १९३४ पौष कृष्णा ६ को हुआ है।

पिताजी बागोर महाराज साहब के पास वंशपरम्परागत पौराणिक तथा पूजनादि कार्य करते थे। वे प्रान्त में अपने समय के अच्छे वैयाकरण भी समझे जाते थे। इनके पास पढ़ने के लिये दूर दूर के छात्र निवास किया करते थे। छात्रों के निवास और अध्ययनादि से घरने प्राचीन भारत के गुरुकुल सा रूप धारण कर रक्खा था।

ऐसे वातावरण में पलेहुए का संस्कृत पढ़ना स्वाभाविक होने के कारण मैंने भी देववाणी संस्कृत की ही शिक्षा प्राप्त की।



बापा

असिमन्नभूद्गुहिलगोत्रनरेन्द्रचन्द्रः।
श्रीबप्पकः क्षितिपतिः क्षितिपीठरत्नम् ॥

(नरवाहन के समय की नाथों के मन्दिर की विक्रम सं० १०२८ की प्रशस्ति)

बापा और उसके वंशजों के इष्टदेव भगवान् एकलिङ्ग तथा गुरु हारीत के विषय में कहा जा चुका है। भगवान् एकलिङ्ग से संबद्ध महाराणाओं के मेवाड़ राज्यके मूल पुरुष बापा के विषय में कहना भी युक्तिसङ्गत ही है।

वंशकी उत्तमता—

बापा के वंशकी प्राचीन काल से वर्तमानसमयतक अनेक ऐतिहासिकों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। यह वंश हिन्दुस्तान के सब राजाओं में शिरोमणि माना जाता है। इसी कारण सम्पूर्ण भारतवर्ष में इस वंश के राजा को आज भी हिन्दुआसूरज कहते हैं।

भारतवर्ष के इतिहास में इस वंश के राजाओं का मुख्य स्थान होने से ऐतिहासिक ग्रन्थ भरे पड़े हैं। यहां इस वंशकी उत्तमता के इतिहास के कुछ प्रमाण उद्धृत कर इस वंश के राजाओं की धार्मिक मनोवृत्ति लिखने का प्रयत्न किया जायगा।

मेवाड़ में राज्य होने के पूर्व इस वंश की राजधानी वल्लभी थी। यहां के राजा के विषय में चीन के यात्री ह्वेन्त्साङ्ग ने, जो ईसवी सन् ६२९ में भारत में यात्रा करने आया था, अपनी



बापा रावल और गुरु हारीत

पुस्तक के दूसरे भाग के पृष्ठ २६६-६७ में अत्यधिक प्रशंसा की है। उसके लेखसे मालूम होता है कि उस समय वल्लभी के राजा भारत के वड़े राजाओं में से थे।

इसी प्रकार महारावल खुमाण के समय में आये हुए अरब के मुसलमान यात्री सुलेमान ने जो ईस्वी सन् ८५१ में भारत में आया था, तथा ईस्वी सन् ८६७ में यात्रा को आये हुए अबूजेदुल हसन ने भी वलहारा (वल्लभी वाले) राजा के विषय में लिखा है कि "यह राजा भारत में प्रसिद्ध राजा है। भारत के स्वाधीन राजा भी इस राजा का वड़ा आदर करते हैं।"

सर टामसरोने १६१५ ईस्वी में अपनी यात्रा के वर्णन में और उसके पादरी एडवर्ड ने भी राणा के वंश की प्रतिष्ठा पर प्रकाश डाला है।

यात्रा करने वाले सभी विदेशी यात्री वर्नियर, लुई, रोसलेट, कनिंघम, और एचिसन साहव ने अपनी यात्रा के वर्णन में महाराणाओं के वंश की उत्तमता और इस वंश का भारतीय नरेशों में पूर्ण आदर का उल्लेख किया है।

योरोपियन्स मिल, इलियट, थाएटर्न, रेनाल्ड, विलियम, अर्म, साल्कम आदि ने अपने अपने इतिहास में उदयपुर के महाराणाओं की प्रतिष्ठा और वंश की उत्तमता का वर्णन किया है।

लोगों की यह भ्रान्त धारणा है कि मुसलमान इतिहासकारों ने इस वंश की उत्तमता के विषय में कुछ नहीं लिखा। केवल

हिन्दू ऐतिहासिकों ने ही स्वाभाविक पक्षपातकर इस वंश की प्रशंसा की है। उनका सन्देह निर्मूल करने के लिये हम मुसलमान ऐतिहासिकों के प्रमाण उद्धृत करते हैं। जो उत्तम होते हैं उनकी प्रशंसा तो स्वयं शत्रुओं को भी करनी ही पड़ती है। स्वयं बादशाह बाबर ने अपनी पुस्तक "तुजकबाबरी" के पृष्ठ २४३ में लिखा है कि "राणा सांगा की ताकत इस मुल्क हिन्दुस्तान में इस दरजे की थी कि राजा और रईस उसकी बुजुर्गी को मानते थे। उसके कबजे का मुल्क दस करोड़ की आमदनी का था; जिसमें कि हिन्दुस्तान के काइदे के मुआफिक एक लाख सवार की गुञ्जाइश हो सकती है।"

इसी प्रकार छपी हुई अकबरनामह की दूसरी जिल्द के पृष्ठ ३८० में लिखा है कि "बादशाही जुलूस के बाद अक्सर ऐसे राजाओं ने भी, जो कभी दूसरे बादशाहों के फर्मांबर्दार (आधीन) न बने थे इताअत (आधीनता) कुबूल करली, लेकिन राणा उदयसिंह ने जो इस मुल्क में अपनी बुजुर्गी का खयाल रखने वाला था, और बहादुरी से अपने बुजुर्गों के मुआफिक विकट पहाड़ों और मजबूत किलों के सबब मग़रूर था, बादशाही फर्मां-बर्दारी कुबूल न की।"

तबकाति अक्बरी के पृष्ठ २८२ में लिखा है कि "हिन्दुस्तान के अक्सर राजाओं वगैरह ने बादशाही मातहती कुबूल करली थी, लेकिन राणा उदयसिंह मेवाड़ का राजा मजबूत किलों जियादह फौज से मग़रूर होकर सर्कशी करता था।"

इसी पुस्तक के पृष्ट ३३३ में लिखा है कि "राणा प्रताप जो हिन्दुस्तान के राजाओं का बुजुर्ग है, अपनी जिन्दगी सकेशी के साथ बसर करता था।"

स्वयं बादशाह जहांगीर ने अपनी पुस्तक तुजुक जहांगीरी के पृष्ट १२२ में लिखा है कि "सबसे पहिले रावल से लेकर राणा अमरसिंह तक २६ पीढ़ियां होती है, जिन्होंने चार सौ इकसठ वर्ष राज्य किया है। इस अरसे में उन्होने हिन्दुस्तान के किसी बादशाह की इताअत नहीं की है। अकबर बादशाह का किले चित्तौड को लेना भी सब जानते हैं, लेकिन राणा से इताअत कराना बाकी रह गया था।"

इसी प्रकार मुन्तखबुल्लुबाबकी पहिली जिल्द के पृष्ट १७२-७३ में अकबर के समय में खफीखां लिखता है कि "राणा की साइर, राहदारी और फौजदारी वगैरह सिगों की आमदनी के सिवा माल की आमदनी एक करोड़ से जियादह है। हिन्दुस्तान भर में उससे बढ़ कर कोई रईस नहीं है, और वह बादशाह को अपनी लड़की नहीं ब्याहता है।"

इतिहास की आंग्रेजी, अरबी, फार्सी, उर्दु, व हिंदी की कोई ऐसी पुस्तक न मिलेगी, जिसमें हिन्दुस्तान का इतिहास तो हो और महाराणाओं के गौरव का वर्णन न हो।

वंश—

भगवान् एकलिङ्ग के अनन्यभक्त बापा के वंश का आज

भारतवर्ष के बहुत से भूभाग पर अधिकार है ।

भारत के राज्यों में अग्रणी इतिहासप्रसिद्ध मेवाड़ राज्य को तो सब जानते ही हैं। इस पर बापा के वंशज महाराणाओं का ही अधिकार है। इसके अतिरिक्त राजस्थान में डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़ और शाहपुरा आदि, काठियावाड़ में भावनगर, पालिताणा, लाठी और वला, गुजरात में राजपीपला और धरमपुर, मध्यभारत में बड़वानी और रामपुरा, महाराष्ट्र में मुधोल, कोल्हापुर और सावन्तवाड़ी, मद्रास प्रान्त में विजियानगर और उत्तर में नेपाल राज्य पर इसी वंश के राजाओं का अधिकार* है ।

शिवभक्ति—

मेवाड़ राज्य के संस्थापक बापा भगवान् एकलिंग (शिव) के परमभक्त हुए। यह उनके प्राप्त हुए सोने के सिक्के, विक्रम संवत् १३३१ की चित्तोड़ रसियाकी छत्री की प्रशस्ति † एकलिंगजी में दक्षिण द्वार की संवत् १५४५ की प्रशस्ति, ‡ तथा वि० सं०

---

* रायबहादुर पण्डित गौरीशङ्करजी के इतिहास तथा वीरविनोद के आधार पर ।

† संप्राप्याद्भुतमेकलिङ्गचरणाम्भोजप्रसादात्फलम् ।
यस्मै दिव्यसुवर्णपादकटकं हारीतराशि र्ददौ ॥
सदैकलिङ्गार्चनशुद्धबोधः संप्राप्तसायुज्यमहोदयस्य ।
रसिया की छत्री की प्रशस्ति पद्य ९ और १०

‡ श्रीमेदपाटभुवि नागह्रदे पुरेऽभूद्धारीतराशिरिति यो द्विजः शिवपदार्पितचित्तवृत्तिः ।
यत्कीर्तिकेतककिरन्मकरन्दबिन्दुरिन्दुः प्रचण्डरुचिरेपचयप्रतापः ।
एकलिंगजी की दक्षिणद्वार की प्रशस्ति पद्य १२

१७३२ की राज प्रशस्ति* से पूर्ण प्रमाणित है। इन्होंने एकलिङ्ग के अनुग्रह से ही मेवाड़ में राज्य स्थापित किया। भक्ति के ही कारण इनके विषय में आयुके चतुर्थाश्रम में सन्यास ग्रहण कर एकलिंगजी की पूजन उपासना आदिका 'एकलिङ्गमहात्म्य' में उल्लेख मिलता है। सन्यास के बाद जीवन के अंतिम दिनों तक आप इष्टदेव की सेवा में ही रहे। यह भगवान् एकलिंग से थोड़ी दूर पर बने हुए बापारावल के समाधि मंदिर से निश्चित होजाता है। बापा के पश्चात् भी उत्तरोत्तर सभी राजा भगवान् एकलिङ्ग के पूर्ण भक्त होते आये हैं। भक्ति ही के कारण मेवाड़ के महाराणा समय २ पर होनेवाले यवनों के आक्रमणों से अपने इष्ट देव के मंदिर को प्राणपण से बचाने का प्रयत्न करते रहे हैं। एकलिङ्गजी के दक्षिणद्वार की प्रशस्ति में महाराणा हम्मीर, लाखा, मोकल, कुम्भा, और रायमल का इष्टदेव के भोग पूजन आदि के लिये ग्राम भेंट करने का वर्णन पाया जाता है। *इसमें शिवभक्ति का प्राचुर्य ही कारण है।

---

* नागह्रदपुरे तिष्ठन्नेकलिंगशिवप्रभोः।
चक्रे बाप्पोऽर्चनं चास्मै वरान्हद्रो ददौ ततः॥
राजप्रशस्ति महाकाव्य ३। ९

* मेवाड़ नरेशों के अतिरिक्त राजस्थान के प्रायः सभी नरेश भगवान् एकलिङ्ग के परम भक्त रहते आये हैं। उनमें जोधपुर, जयपुर, और डूँगरपुर नरेश विशेष उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने भक्तिवश भगवान् एकलिंग के मामावास, मथुरावाला, कुमारावास और कल्याणपुर (एकलिंग गुड़ा) नाम के गाँव भेंट रक्खे हैं।

जाते हैं, जिनसे तत्तत्कालीन मेवाड़ निवासी संस्कृतकवियों के भाव, शैली और भाषाका भी दिग्दर्शन हो जाय।

श्री योगराजेश्वरनामधेयो, देवोवृषाङ्कः सशिवाय वोऽस्तु।
स्तुतः सदा यः प्रमदात् प्रसन्नः किं किं प्रभुत्वं न ददाति सद्यः॥

(संवत् १२२० की चीरवा ग्रामके मन्दिर की प्रशस्ति)

विषमविशिखशस्त्रं शक्तिराद्या विलग्ना
वपुषि विशदशोचिश्चन्द्रमा मूर्ध्निभग्नः।
स्मर समर विसर्पद्दर्पलोलस्य यस्य,
क्षितिधरकटकान्ते सोवताच्चन्द्रचूड़ः॥

(१३३१ की चित्तोड़ रसिया की छत्री की प्रशस्ति)

वेदा वागिति शिष्टतामुपगतो यः कर्मणामीक्षिता,
साक्षीतत्प्रतिभूः पुनर्भवति सत्सिध्दार्थसंदर्शनः॥
जात्यैवैषु विनश्वरेषु सकलं दाता विविक्तः फलं,
देवः स्वस्तिकरः परः स सततं स्तादेकलिङ्गाभिधः॥

(संवत् १४८५ चित्तोड़,समिद्धेश्वर शिवके मन्दिर की प्रशस्ति)

स भूयादेकलिङ्गेशो जगतां भूतये विभुः।
यस्य प्रसादात्कुर्वन्ति राज्यं राणा भुवः स्थितम्॥

(संवत् १७७५ की सीसारमा वैद्यनाथ के मन्दिर की प्रशस्ति)

सदैकलिङ्गस्यपदारविन्दं, भजाम नोयाम कदाचिदेव।
इत्थं विधाय स्तुतिमस्य देवता स्वर्गस्य रक्षाकृतये त्वराकुलाः

(संवत् १७०८ जगन्नाथरायजी के मन्दिर की प्रशस्ति)

तुहिनकिरणहीरक्षीरकर्पूरगौरं,
वपुरपि जलदाभं कालिकापांगवल्या: ।
प्रतिकृतिघटनाभिर्बिभ्रदभ्रान्तभक्त:,
कलयतु तव राजन् मंगलान्येकलिङ्ग: ॥

(संवत् १७३२ राजसमुद्र की प्रशस्ति)

इनके अतिरिक्त महाराणाओं के यहां शिलालेख, सुरह, ताम्र पत्र, पट्टे, परवानों में भी सबसे प्रथम "एकलिङ्गो जयति" लिख का प्राचीन रिवाज चला आता है ।

वर्तमान समय में भी जन्म दिन पर यज्ञशाला में हो । ८ ३ का एवं अन्न प्राशन, यज्ञोपवीत, विवाहादि, संस्कारों पर राज कुमारों का सबसे प्रथम गोस्वामियों के हात से इष्टदेवकी आशिक चन्दन आदि रिवाज प्रचलित हैं, जिन से मेवाड़ नरेशों के भगवान् एकलिङ्ग तथा हारीत वंशज गुरुओं के प्रति पूर्ण दृष्टिगोचर होती है ।

इतिहास शिलालेख और प्राचीन रिवाजों पर करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बापा के बाद सभी मेवाड़नरेश एकलिङ्ग के परम भक्त होते आये हैं ।

कैलास वासी महाराणा फतह सिंहजी साहब की तो एकलिङ्ग के प्रति परमभक्ति वैशाख मासमें पानी के घड़े कुण्ड लाकर जलहरी में उडेलना तथा स्वयं सेवा करना आदि ने देखा ही है ।

बापा के वंशकी वर्तमान विभूति मेवाड़ नरेश महाराणा भूपालसिंहजी साहब अपने वंशजोंही के अनुरूप प्राचीन मर्यादा के पालन करने वाले भगवान् एकलिंग के परमभक्त राजा हैं।

आपने भक्ति वश इष्टदेव के धारण के लिये एक सुन्दर बहुमूल्य हीरे का नाग व धतूरे के पुष्प के समान सुवर्ण के पुष्प बनवाये हैं, जो समय समय पर धारण कराये जाते हैं। आपने मन्दिर में प्रकाशके लिये बिजली का समुचित प्रबन्ध भी कराया है।

प्राचीनमर्यादारक्षक, शिवभक्त, शिक्षाप्रेमी, दानी, परम दयालु और सरलचित्त महाराणा के प्राप्त होने से आज मेवाड़ की प्रजा बड़ी भाग्यशालिनी है।

विशेष क्या, योग्य मेवाड़ नरेश को देख चरणों को चूमने के लिये लालायित हो भीम, काछोला, और भोमटकी वसुन्धरा भी मेवाड़ की सीमाकी वृद्धि करती हुई आश्रय प्राप्तकर अपने को धन्य समझती है।

अन्तमें भगवान् आशुतोष एकलिङ्ग से यही प्रार्थना है कि ऐसे नररत्न महाराणा को उत्तरोत्तर उन्नति प्रदान करे।

